ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

मानव धर्म का मूलमन्त्र

अहिंसा



लेखक

पं० त्रिलोकी नाथ पण्डित

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत)

प्रकाशक

भविष्यत् कल्याण केन्द्र

श्री गीता भवन कुलग्राम कश्मीर-१९२२३१

* विषय सूची *

लेखक परिचय :-

नाम	...	श्री त्रिलोकी नाथ पण्डित
गोत्र	...	उपमन्यु-शाण्डिल्य
शिक्षा	...	एम० ए० (हिन्दी एवं संस्कृत), बी० एड०, प्रभाकर
व्यवसाय	...	अध्यापन, कश्मीर शिक्षाविभाग
पद ...	...	मुख्य-अध्यापक
निवासस्थान एवं पता		पारिजात-आश्रम, रैणीपोरा (राज्ञी पुरा) कुलगाम, कश्मीर-१९२२३१

सार्वजनिक कार्यक्षेत्र :—

i) उप-प्रधान, विश्वसंस्कृत प्रतिष्ठानम्, कश्मीर ।

ii) महामन्त्री, देहाती हिन्दू संगठन, कश्मीर ।

iii) व्यवस्थापक, कुलगाम केन्द्र, राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति वर्धा

iv) सक्रिय सदस्य, विश्व हिन्दू परिषद, कश्मीर

v) सेवाकार :— उत्कृष्ट — पारिजात आश्रम, श्री गौरी शङ्कर-मन्दिर, सत्थू बरबर शाह श्रीनगर ।

vi) अभिभावक एवं आचार्य, श्री गीता-भवन कुलगाम, कश्मीर ।

मुद्रक :- कृष्णा प्रिन्टिंग प्रेस, कोठीबाग, श्रीनगर, कश्मीर ।

संख्या :- १०००   श्री कृष्ण जन्माष्टमी १९८४

पुनर्मुद्रणाधिकार लेखकाधीन

मूल्य :- ७/-



श्री त्रिलोकी नाथ पण्ड़ित (लेखक)

ॐ

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानरूपम्,
द्वन्दातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीः साक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥



सर्वजगत् विख्यात श्रीमान् श्री पापा जी महाराज

लोक संग्रह की भावना पर आधारित
लेखक के इस
प्रशंसनीय निष्काम कर्म योग पर
हमारा
आशीर्वाद
(श्रीमान् श्री पापा जी महाराज)

* समर्पण *

लेखक का यह प्रथम प्रयास

अपने प्रातःस्मरणीय गुरुदेव, ब्रह्मानन्दमग्न गृहस्थी संत, उत्कृष्ट-पारिजात-आश्रम, श्री गौरी शङ्कर मन्दिर, सत्थू बरबर शाह, श्रीनगर, कश्मीर के संस्थापक एवं अभिभावक

श्रीमन् श्री पापा जी महाराज

के

चरण कमलों में

सादर एवं सविनय समर्पित

जिनके आशीर्वाद, अनुग्रह एवं अनुकम्पा से

अकिंचन लेखक

गौरवान्वित

हो रहा है

।।। हरि ॐ तत् सत् ।।।

ॐ कृष्णं वन्दे जगत्गुरूम् ।

"भूमिका"

सज्जनों के गुणों का वर्णन करते हुए सत्शास्त्रों ने परोपकार करने के गुण का विशेष रूपसे वर्णन किया है । यद्यपि मैं अपने आप को इस कोटि की गणना में सम्मिलित होने के योग्य नहीं समझता, और केवल मात्र एक जिज्ञासु - विद्यार्थी के रूप में ही मानता हूँ फिर भी बहुत समय से मेरे अन्तर्मन में यह प्रबल इच्छा हो रही थी कि मैं भी अपनी योग्यतानुसार कोई चिरस्थाई भेंट अपने बन्धुओं के चरणों में अर्पण करूँ । कामना यदि निःस्वार्थ रूप से शुद्ध-संकल्प भावमय हो तो करुणा-निधान परमात्मा उसे अवश्य पूर्ण करते हैं । और मेरी इसी कामना का फल इस पुस्तक के रूप में निकला है ।

यह पुस्तक भेंट करते समय मुझे अपने अकिंचन एवं साधारण सा व्यक्ति होनेका पूर्ण रूपसे अनुमान है और यही कारण है कि मैं अपने प्रबुद्ध एवं विद्वान जाति–बन्धुओं को यह भेंट करते समय कुच्छ संकोच सा अनुभव कर रहा हूँ । यद्यपि इसमें कोई नई बात नहीं कही गई है अपितु सनातन-सत्य की ही व्याख्या की गई है । किन्तु आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप इसका स्मरण दिलाना मैं दैव - इच्छा से अपना कर्त्तव्य समझता हूँ । पाण्डित्य - प्रदर्शन करने या धनोपार्जन करने का विचारमात्र भी इस पुस्तक का लक्ष्य नहीं है । यह पुस्तकरूपी पुष्पोपहार मैं पहली ही बार साधारण रूप से सारी मानवता के, एवं विशेषरूप से अपनी कश्मीरी पण्ड़ित जाति के चरणों में अर्पण करने हेतु केवल लोकसंग्रह की भावना से, उपस्थित कर रहा हूँ ॥ इस में जो

कोई भी सत्य एवं शुद्ध शास्त्रसम्मत बात दिखाई दे उसका श्रेय परमपिता परमेश्वर एवं मेरे जन्म जन्मान्तरों के गुरुदेवों को दिया जाना चाहिए, और यदि इसमें कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो जाए तो वह इस अल्पज्ञ एवं अकिंचन जन की मानकर क्षमा करनी चाहिए। विज्ञ पाठक यदि किसी भी प्रकार त्रुटि निवारण करें तो मैं उनका अत्यन्त आभारी रहूँगा ॥

वादविवादों के व्यर्थ के तर्क - कुतर्कों से बचते हुए केवलमात्र विशुद्ध ज्ञानार्जन के निमित्त शङ्का-समाधानों के लिए:-

(१) पारिजात आश्रम रैणीपोरा कुलग्राम तथा

(२) भविष्यत कल्याण केन्द्र श्री गीताभवन कुलग्राम की सेवाए यथायोग्य रूप से हर समय निष्काम भावना से प्रस्तुत रहेंगी अपनी आर्थिक स्थिति एवं जन–साधारण के व्यस्त जीवन को दृष्टि मे रखकर, मैं ने अपनी ओर से कम से कम कलेवर में अधिक से अधिक बातों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। इस में कहांतक सफलता मिली है सहृदय एवं श्रद्धालु महानुभाव ही इसका निर्णय कर सकते हैं। यदि थोडे से बन्धुओं को किंचिन्मात्र भी अपने आध्यात्मिक उत्थान में इस पुस्तक से कोई सहायता मिले तो मैं अपना यह प्रथम प्रयास सफल समझूँगा ॥

अन्त में मैं उन सब बन्धुओं, मित्रों, संत-महात्माओं एवं अन्य धार्मिक महानुभावों का हृदय से आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं, जिन के सत्संग एवं परामर्श से मुझे निष्काम रूप से परोपकार रूपी सेवा-यज्ञ में अपनी किंचित् मात्र आहुति ड़ालने की प्रेरणा मिली।

मैं अपने ही एक अनुज, किन्तु, श्रेष्ठ गुरू-भाई, उत्कृष्ट पारिजात आश्रम सत्थू बरबरशाह, श्रीनगर के कोषाध्यक्ष एव मुख्य सेवाकार श्रीमान पण्ड़ित द्वारिका नाथ जी रैणा, बी० ए०, बी०, एड़० का हृदय से आभार प्रकट करता हुँ, जिनकी अनथक एवं निष्काम सहायता से ही इस पुस्तक का प्रस्तुत रूप में छपना सम्भव हो सका है। मैं परम्-पिता परमेश्वर तथा प्रातः स्मरणीय गुरुदेव से प्रार्थी हूँ कि वे इस सुयोग्य पात्र को सदा अपनी अनुकम्पा में रखकर मनोकामना की पूर्ति करते रहें।

मैं सुप्रसिद्ध शैवाचार्य एवं ईशोपलब्ध - संत, ईश्वर स्वरूप श्रीमान् स्वामी लक्ष्मण जी महाराज के श्री-चरणों में पूर्ण नम्रता से प्रणाम करता हूँ, जिन्हों ने अपरिचित् होने पर भी मेरे पत्र का सारगर्भित एवं मार्गदर्शी उत्तर देकर मुझे सार्वजनिक रूप से प्रकट होने का साहस एवं बल प्रदान किया।

मैं अपने प्रातः स्मरणीय गुरुदेव, सिद्ध-योगियों की परमपरा के मूर्त्तिमान आधुनि प्रतीक 'श्रीमान श्री पापा जी महाराज' (श्रीमान् जानकी नाथ जा दर) के चरण-कमलों में सदा नत-मस्तक हूं, जो हम जैसे अकिंचनों को निमित्त बनाकर, स्वयं ही लोकोपकार एवं अध्यात्मिक मार्गदर्शन का पुणीत-कर्त्तव्य निभा रहे हैं। ॐ।

सह नौ अवतु, सहनौ भुनक्तु।
सहवीर्यं करवावहै ॥
तेजस्विनावदीतमस्तु, मा विद्विषावहै
ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! ॐ !!!

ॐ शम्

"अहिंसा परमो धर्मः"

प्रेरणा

भगवदिच्छा कितनी प्रबल होती है इसका अनुमान तो मुझे समय २ पर पहले ही हो चुका है, और यदि मैं यह कहूं कि यह पुस्तिका लिखने की प्रेरणा, मुझे भगवत्‌इच्छा से ही मिली है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

बात जनवरी १६८२ की है जब मैं एक भक्तमित्र से धार्मिक चर्चा कर रहा था। वे महानुभाव शायद पंजाब के रहने वाले हैं और यहां हमारे ग्राम में उनकी एक दुकान है। बात चलते चलते आगामी शिवरात्रि पर आ पहुँची और उक्त महानुभाव ने शान्त भाव से हम कश्मीरी पण्ड़ित नामधारी ब्राह्मणों को "ब्राह्मराक्षसों" की उपमा दी, क्योंकि हम में से अधिकतर शिवरात्रि के पवित्र त्यौहार पर न केवल मांस भक्षण ही करते हैं, अपितु मांसबलि भी चढाते हैं। निजीरूप से हम घर पर तो ऐसा नहीं करते हैं और न मैंने कभी उक्त रीति-रिवाजों से सहमति ही प्रकट की है। किन्तु फिर भी एक गैर कश्मीरी बन्धु का हमारी पण्ड़ित-जाति पर आक्षेप करना मुझे बहुत ही चुभ गया। और मैं विचारों के अथाह सागर में गोते खाने लगा।

भाग्यसे यहां के कुच्छ नव-युवकों ने बिखरे हुए देहाती हिन्दुओं की समस्याएँ हलकरवाने के लिए एक वर्ष पूर्व एक संगठन का निर्माण किया था और मेरे न चाहने पर भी मुझे इसका महामन्त्री नियुक्त किया था। जिन उद्देश्यों के लिए इस संगठन

का निर्माण हुआ था, वे या तो कुच्छ हल हो चुके थे या कुच्छ धूमिल पड गए थे और बिरादरी के असहयोग के कारण संगठन के कार्य में व्यवधान पड़ रहा था। इधर मेरे सहयोगी इस बात पर ड़टे हुए थे कि "संगठन" जीवित रहना चाहिए। मैं ने उनको आश्वासन दिया था कि इस संगठन को आर्थिक और सामाजिक समस्याएं हल करवाने के साथ साथ अधि-कतर "धार्मिक समस्याए" हल करवाने पर लगा दिया जाएगा।।

अब एक महान धार्मिक समस्या हमारे सामने खड़ी हुई थी कि हम कश्मीरी पण्ड़ित लोग वास्तव में चण्ड़ालों का सा कर्म करते हैं या नहीं। सौभाग्य से एक महान शैवाचार्य विद्यमान हैं जो शैव-दर्शन के न केवल प्रकाण्ड विद्वान ही हैं अपितु जिन्होंने इस दर्शन को अमली रूप भी दे दिया है। अतः क्यों न सब से पहले उन्ही की सेवा में पत्र द्वारा उक्त समस्या को लाया जाए। तो बडे पसो-पेश के बाद मैं ने हौसले से काम लिया और "ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्षमणजी महाराज" की सेवा में इस अकिंचन जन ने पत्र प्रेषित किया जो इसी पुस्तक के किसी अन्य स्थान पर प्रकाशित है। किन्तु उनका उत्तर बहुत देर के बाद मिला जिसका कारण उस उत्तर को पढ कर ही आपको मिलेगा। इस मध्यावधि में मैं ने एक अन्य परि-पत्र भी तैय्यार किया जिसकी बहुत सी प्रतियां "साईक्लोस्टाइल" द्वारा बनवाई गईं और बहुत से विद्वानों, पण्ड़ितों एवं धर्म-गुरुओं की सेवा में भेजी गईं। इसके बाद मुझे "ईश्वराश्रम" से स्वामीजी का पत्र प्राप्त हुआ जिसे पाकर मेरी शक्ति-हीन बुद्धि के लिए एक सहारा मिल गया और मुझे अपनी विचार धारा बलवती महसूस हुई।

इसके बाद मुझे बहुत से विद्वानों, धर्मगुरुओं, एवं भगवद्-भक्तों के उत्तर मिलते रहे जिन्हें मैंने अपने सहयोगियों के समक्ष रखा। अधिकतर व्यक्तियों ने, यद्यपि, मांस बल्यार्पण के विरुद्ध मत व्यक्त किया है किन्तु कश्मीर के एक सुप्रसिद्ध शैवदर्शन के विद्वान ने मांस बलि को धर्मानुरूप ठहराया है। किन्तु संक्षिप्त पत्र में कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया है जो बुद्धि-ग्राह्य हो। फलत: मुझे कुच्छ अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा मिली और स्वयं भी किसी निर्णय पर पहुँचने की क्षमता उत्पन्न हुई। पत्र-व्यवहार में जिन प्रश्नों को मैंने स्वयं उठाया था उन्हें मैंने स्वयं ही अपने समक्ष रखा और ईश्वर से सविनय हार्दिक प्रार्थना की कि वे ही मुझे सत्-बुद्धि प्रदान करें और किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायता करे। मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपने सहयोगियों के साथ एक निर्णय पर पहुंच चुका हूँ और चाहता हूँ कि आप भी इसपर अन्तर्मन से विचार करें ताकि हमारी मुट्ठी भर जातिका उद्धार हो सके और ईश्वर हमें अधिक बुराई के गर्त में पड़ने से रक्षा करें। मैं यह स्वीकारोक्ति करता हूं कि मैं न तो कोई विद्वान हूँ और न कोई धर्म-गुरु ही। मैं तो एक साधारण सा गृहस्थी हूं किन्तु जिज्ञासु भावना अवश्य रखता हूं। मेरी तुच्छ-बुद्धि में जो बात समझमें आए मैं सच्चे मन से उसीके अनुरूप जीवन को ढ़ालने का भी प्रयत्न करता हूँ। क्योंकि कोई भी दर्शन तब तक मान्य नहीं हो सकता जब तक कि न उसे व्यावहारिक रूप दिया जाए।

"देहाती हिन्दु संगठन" के कार्य कर्त्ताओं ने मुझे आदेश दिया है कि उक्त सारे पत्र-व्यवहार सहित, अपने विचार एक

पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करूँ ताकि हम सबका धार्मिक पथ-प्रदर्शन भी हो सके और "संगठन" का कार्य भी चलता रहे। एक और अभिप्राय यह भी है कि विधर्मियों की ओर से हिन्दु-धर्म पर जो आक्षेप और प्रहार किए जा रहे हैं, उनका किसी हद तक तोड़ भी हो सके। इसमें हमें कहां तक सफलता मिली, यह निर्णय तो विद्वान और धर्म-प्राण जनता ही ले सकेगी॥

═══

प्रसङ्ग २

अहिंसा का व्यावहारिक अर्थ

स्थूलरूप से "अहिंसा" का अर्थ है "न मारना"। अर्थात
चौरासी लाख प्राणिय [illegible] बूझ क
करना। सभी सत्शास्त्रो [illegible] था हेया
हिंसा सब प्रकार से त [illegible] ई। हमारे शास्त्र-कारों
द्रष्टा ऋषियों के आदेशों को अपने अनुभव की कसौटी [illegible]
लिया है और हमारे सामने कुच्छ निर्णय रखे हैं। हमें भी चाहिए कि उनको हम अनुभव में लाएँ और तब ही फैसला दें। हमें यह अच्छे प्रकार से देखना है कि "मानव" और "दानव" में क्या भेद है।

बहुत से अन्य शब्दों की भांति हिंसा भी तीन प्रकार की मानी गई है – मनसा, वाचा, कर्मणा॥

यदि हम मन में किसी दूसरे प्राणी के विरुद्ध कोई दुर्भावना रखें तो हम मन से उसकी हिंसा करते हैं। यदि

'कुवाणी' द्वारा हम किसी को सम्बोधित करते हैं तो हम वाणी द्वारा उसकी हिंसा करते हैं, और कर्म द्वारा किसी की हिंसा करना तो सहज ही समझ लिया जा सकता है। संसार में कौनसा ऐसा "धार्मिक दर्शन" हो सकता है जो उपरोक्त तीनों प्रकार की हिंसा के पक्ष में मत देगा, चाहे वह दर्शन 'सनातन हिन्दू धर्म" की भांति ईश्वर निर्मित हो अथवा विश्वके उन्य धर्मों की भांति मानव निर्मित। अब प्रश्न यह उठता है कि भगवान कृष्ण ने अर्जुन को लड़ने के लिए क्यों प्रेरित किया। अर्जुन तो अहिंसा व्रत पर रह कर युद्ध से भागना चाहता था — किन्तु वह योगीराज कृष्ण के आदेशानुसार ही लड़ने के लिए तय्यार हुआ। यहां हमें "हिंसा" और "अहिंसा' के संकुचित अर्थ से ऊपर उठना चाहिए।
ए वा दुष्ट-... ें और अन्य ... ाणियों का केवल अपनी
भी इस ... तमन से विचार कर ता
सिद्धि ... " है और ऐसे दुष्ट-
जातिका ... हो सके और ईश्वर ह...
को, किस... स्व... ी भावना के विना, दण्ड़ित
में पड़ने ... ह स्वीव...
ा वध करना "हिंसा" ... ...ाती। कुछ थोडे प्राणियों
न तो व...
का ... करना ताकि अन्य अनेक प्राणी उनके अत्याचारो से मुक्त हों, "हिंसा" नहीं आपितु "अहिंसा" के वृत्त में ही आती है। क्योंकि इस में परोपकार की भावना ही काम करती है नकि किसी प्रकार की स्वार्थ-सिद्धि की भावना। इसी प्रकार कोई शत्रु, देश पर आक्रमण करे, धर्म-कर्म के साधनों को नष्ट-भ्रष्ट करे, तो देशवासियों को मिलकर उसका, साहस के साथ, मुकाबला करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो वह कायरता होगी जो स्वयं ही एक दोष है। ऐसे ही आततायियों, दुष्टों, दुराचारियों एवं आसुरी भाव रखने वालों

का संहार करने के लिऐ प्राचीन भारत में क्षत्रिय-वर्ण का संगठन किया गया था। इसी प्रकार कोई विषैला प्राणी या पागल जन्तु मारने आजाए तो उसका वध करना ही धर्म है नकि अहिंसा, अहिंसा पुकार २ कर स्वयं उसका ग्रास बन जाना। इसके विपरीत यदि कोई मानव किसी अन्य प्राणी को केवल इसलिए मारता है कि उसकी कोई स्वार्थ-सिद्धि हो जाए—जैसे मृत व्यक्ति का धन-धान्य या माल-जाइदाद मिल जाए; या मृत-प्राणी का मांस खाकर अपनी जिह्वा-लोलुपता को शान्त किया जाए, या शिकारियों की तरह केवल कौतुक-दर्शन के लिए अन्य प्राणियों का वध किया जाए—तो यह सर्वथा पाप है और हिंसा के अन्तर्गत आता है। अतः व्यावहारिक रूप से हमें "अहिंसा" के वास्तविक अर्थ को समझना चाहिए और उसी के अनुरूप जीवन व्यतीत करना चाहिए॥

प्राङ्क ३

अहिंसा और भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शनों के एक मात्र स्रोत हैं अपौरुषेय 'वेद'। बडे बडे विद्वान और साहित्यकार वेदों की काल-गणना करने में आजतक असमर्थ रहे हैं। कुच्छ लोग इनकी आयु सहस्रों वर्ष बताते हैं, कुछ लाखों वर्ष और कुछ अनादि कालिक मानते हैं। वेद बहुत समय तक मौखिक रूप से अवतरित होते रहे और मानवता का पथ-प्रदर्शन करते रहे। किन्तु

प्राकृतिक नियमानुसार युग परिवर्तन होते रहे और इस प्रकार सर्व साधारण जनता के लिए उनका समझना कठिन होता गया। अतः विभिन्न आचार्यों ने अपनी बौद्धिक पहूँच के अनुसार अपने-अपने मन्तव्य समय समय पर व्यक्त किए, जो बाद में विभिन्न दर्शनों के रूप में हमारे सामने आए। मोटे तौर पर छः बड़े दर्शन हैं जो भारतीय षठ्-दर्शन कहलाते हैं। ये हैं :- न्याय, वैशेषिक, सांख्य योग, मीमांसा, एवं वेदान्त। ये सभी आस्तिक दर्शन कहलाते हैं इसलिए नहीं कि ये ईश्वर-वादी हैं अपितु इसलिए कि ये सभी वेदों को मानते हैं। वेदों की निन्दा करने वाले को ही नास्तिक कहते हैं "नास्तिको वेदनिन्दकः" ।। इसके अतिरिक्त समय समय पर कुच्छ वेदेतर दर्शनों का भी प्रादुर्भाव हुआ जिन में जैन, बौद्ध, चार्वाक एवं शैव-शाक्त वर्णन-योग्य हैं। समय बदलने पर आस्तिक और नास्तिक शब्दों की पुनः व्याख्या की गई और मान लिया गया कि जो दर्शन ईश्वर और वेदों को मान्यता दें या न दें किन्तु परलोक को मानने वाले हों वे "आस्तिक" और जो वेद तथा परलोक दोनों को मान्यता न दें वे "नास्तिक" दर्शन, माने जाने लगे। इसके अनुसार बौद्ध, जैन एवं शैव-शाक्त भी आस्तिक दर्शनों के रूप में स्वीकार किए गए। किन्तु एक मात्र चार्वाक दर्शन ही 'नास्तिक' दर्शन कहलाया। चार्वाक दर्शनानुयाई घोर भौतिकवादी हैं। और इस शरीर को ही आत्मा मानते हैं और इसी संसार में प्राप्त होने वाले दुःख-सुखों को "नरक" और "स्वर्ग" मानते हैं। वे न ईश्वर को ही मानते हैं न आत्मा को ही, न वेदों को ही और न परलोक को ही। आधुनिक मार्क्स-

मतावलम्बियों की ही भांति वे इसी जगत के भौतिक सुख-सम्पदा को प्राप्त करना ही अन्तिम लक्ष्य मानते हैं। — चाहे अच्छी रीति से प्राप्त हो जाए अथवा बुरी रीति से। इस प्रकार चार्वाक दर्शन एक तरफ रहा और शेष दर्शन दूसरी तरफ। हमें भी इस दर्शन के साथ कुच्छ लेना देना नहीं क्योंकि किसी भी प्रकार का कोई नैतिक मूल्य या आदर्श इसके साथ मेल नहीं खा सकता ॥

रहे दूसरे दर्शन, अर्थात् षट्–दर्शन एवं जैन, बौद्ध और शैव--शाक्त। इनमें भी परस्पर बहुत बातों पर घोर मत-भेद हैं। जीव क्या है, आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इहलोक और परलोक किसको कहते हैं, यह सब संसार-लीला किस प्रकार बनती और 'लय' होती है— इन सब प्रश्नों पर बहुत से मतभेद हैं। साधना–उपासना की रीतियों में भी इन में काफी मतभेद है, किन्तु कई बातों में साम्य भी हैं। और सब से बड़ा 'साम्य' अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बुनियादी साधनों को व्यवहारिक रूप देने में है। जहां तक मैंने समझ लिया है उक्त सभी दर्शन सत्य, शौच, परोपकार और पवित्रता के सार्वभौम आदर्शों पर अधिक बल देते हैं। इसी प्रकार सभी दर्शन अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बुनियादी साधनों – यमनियम पालन को एक–समान मान्यता देते हैं। अतः हम यम-नियम पालन करने के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करेंगे।

उक्त सब दर्शनों का मंथन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यम पांच प्रकार के है और नियम भी पांच प्रकार के हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य

तथा अपरिग्रह – इन पांच बातों का पालन 'यम' कहलाता है, और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान–इन पांच बातों का पालन करना 'नियम्' के अन्तर्गत आता है। 'यम' और 'नियम' में सर्व प्रथम "अहिंसा" शब्द आता है और स्पष्ट है कि उक्त सभी दर्शन 'अहिंसा' को सर्व प्रथम मान्यता देते हैं। सभी दर्शनों के लिए यह आधारशिला या बुनियादी-पत्थर है। जिसके विना कोई भी दर्शन-रूपी मकान निर्मित नहीं हो सकता। यह भी सहज रूप में बुद्धि-गम्य है कि यदि बुनियाद के विना ही कोई मकान का निर्माण करना चाहे तो वह दृढ या अधिक समय तक कायम रहने वाला नहीं हो सकता॥

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने दैवी-सम्पदा और आसुरी–सम्पदा का विशद वर्णन किया है। दैवी-सम्पदाओं में उन्होंने 'अहिंसा' को एक विशेष स्थान दिया है अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशनम्......भवन्ति सम्पदां दैवीं...... [१६, (२ तथा ३)] बौद्ध और जैन दर्शन तो पूर्णरूपेण 'अहिंसा' पर ही निर्भर करते हैं। इन दर्शनों के मतावलम्बी तो वायु में श्वास द्वारा कीटानुओं को परोक्षरूप में मारना भी पाप समझते हैं। जहां तक मैंने समझ लिया है शैव मत में भी अहिंसा - पालन एक अनिवार्य-अङ्ग है। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में तो स्पष्ट रूप से अहिंसा व्रत पालन करने का निर्देश है। शैवदर्शन के आधुनिक कर्मठ आचार्य ईश्वर स्वरूप श्री स्वामी लक्ष्मण जी महाराज तो स्पष्ट रूप से "अहिंसा" के पक्ष में हैं। वे शैवशास्त्र के एक ऐसे आचार्य हैं जिन्हों ने इस दर्शन को कार्यरूप देकर अपना सारा जीवन

ही व्यतीत किया है। अतः इस दर्शन के विषय में उनकी राय तो सर्वमान्य है और "शिलालिखितमक्षरम्" है। उनका मत परिशिष्ट "१" में इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रकाशित है॥

ऊपर लिखित विवर्ण से यह स्पष्ट है कि सभी भारतीय दर्शन एव धर्म–चाहे उनका वैदिक आधार हो अथवा लौकिक —"अहिंसा परमो धर्मः के मन्तव्य को प्राथमिकता देते हैं। इस प्रकार मांस-भक्षण, मांस बलि–चढावन या किसी भी प्रकार की जीव–हिंसा का धार्मिक-कृत्यों में गौन रूप से भी कोई स्थान नहीं मिल सकता। कुछ इतिहासकार या कोरे पुस्तकस्थ–ज्ञानी महानुभाव अपने निजी जीवन के मांस भक्षण के कुकृत्य पर आवरण ड़ालने के लिए अथवा इसे धार्मिक-रूप प्रदान करने के लिए कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का हवाला देते हैं कि अमुक काल में अमुक व्यक्ति ने अमुक प्रकार से मांस-भक्षण किया है या इसकी बलि चढाई है, किन्तु ये एतिहासिक हवाले, जो अधिकतर कोरी कल्पनाओं या अवास्तविक घटनाओं पर आधारित होते हैं, हमारे लिए कोई प्रमाण नहीं हो सकते। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन काल में कुछ मनुष्य हिंसावृत्त भी थे किन्तु समाज में उनको नीच – दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें 'चाण्ड़ाल' 'श्वपाक राक्षस, असुर और न मालूम कितने अप-शब्दों से याद किया जाता था। सनातन-धर्म के दो मूल स्तम्ब हैं — मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम एवं योगिराज भगवान श्रीकृष्ण। क्या इन दोनों अवतारों के समस्त जीवन में एक भी ऐसा उदाहरण मिल सकता है जब उन्होंने मांसभक्षण की स्वीकृति

दी हो ? स्पष्ट है कि सारे धर्म-ग्रन्थ छान कर भी ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिल सकता। इसके विपरीत 'कंस' तो श्रीकृष्ण के ही मामा थे, उग्रसेन के बेटे तथा देवकी के भाई थे तो क्यों उन्हें 'असुर' (कंसासुर) या 'राक्षस' कहकर याद किया जाता है जबकि श्रीकृष्ण देवता-स्वरूप पूजे जाते हैं। इसी प्रकार 'रावण' तो जन्मसे ब्राह्मण था, चारों वेदों का ज्ञाता था महान् तपस्वी था तथा महान भगवद्भक्त भी। जो वह प्रतिदिन अपने इष्टदेव को अपना एक-एक शीश काटकर प्रस्तुत करता था, ऐसा होने पर भी उसे राक्षस या दैत्य नाम से पुकारा जाता है क्योंकि उसने 'वर' प्राप्त करके जो शक्ति पाई उसका उसने दुरुपयोग किया। जीव-हिंसा, व्यभिचार, और पर-सम्पति-हरण जैसे कुकृत्य करने के कारण ही उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और आजतक उसका पुतला पतिवर्ष विजय-दशमी पर जलाया जाता है। इसके विपरीत वैदिक-मूल्यों का पालन करने वाले तथाकथित नीच जातियों में जन्म लेने वाले "वाल्मीकि' 'व्यास' विदुर और प्रह्लाद जैसे महानुभाव, प्रातः स्मरणीय ऋषि-मुनि मान लिए जाते हैं। क्या संसार में एक भी ऐसा उदाहरण मिल सकता है जिस से यह सिद्ध हो सके कि जीव हिंसा करके किसी ने ईश्वर-प्राप्ति या मोक्ष-लाभ प्राप्त किया हो ? यदि नहीं तो इस कुकृत्य को हमारे धर्म में किस प्रकार स्थान मिल सकता है॥

यह तो हमारा दुर्भाग्य है कि उर्वाचीन धार्मिक ग्रन्थों में समय-समय पर कतिपय धूर्त-प्रकृति-विद्वानों ने कुच्छ ऐसे

श्लोकों का भी प्रक्षिप्त रूप से समावेश किया है जिनको अलग निकालना अब बहुत कठिन हो गया है। यही कारण है कि कुच्छ पुराण और स्मृति-ग्रन्थ विशुद्ध रूप में उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। फलतः 'बाल की खाल' निकालने में मात्र पुस्तकीय-ज्ञान रखने वाले उपाधिधारी पण्ड़ित और विद्वान 'अर्थ' का 'अनर्थ' करके स्वपक्ष का प्रतिपादन करते आ रहे हैं। पाश्चात्यविद्वानों के लिखित ग्रन्थों को या उनके अनुवाद-मात्र को पढकर ही आधुनिक काल में बहुत से लोग अपनी बौद्धिकता की इति-श्री समझते हैं। ऐसे लोग आज भी यही समझते हैं कि आर्य लोग मूल भारत वासी नहीं अपितु कई विदेशों से आए हैं। यदि ऋग्वेद का सही तौर पर अवलोकन किया जाए तो कितने ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिन से सिद्ध होता है कि आर्य मूलतः भारतवासी ही थे और यहीं से चलकर मध्य-एशिया और दूसरे देशों में चले गए थे। (द्रष्टव्य-आचार्य भगवद्दत्तकृत निरुक्त भाष्य) वरन हमारे पुराणों और स्मृति-ग्रन्थों में तो स्पष्ट रूप से वेदानुकूल मूल्यों, विशेष रूप से 'अहिंसा' पर बल दिया गया है। आधुनिक समाज के विधान-निर्माता प्रसिद्ध स्मृतिकार मनु महाराज ने "मनु-स्मृति" में पशुहिंसा करने वाले या मांस-भक्षण करने वालों को आठ प्रकारक माना है जो समान रूप से "घातक" हैं:-

अनुमन्ता विशसिता निहता निहता क्रय-विक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादक चेति घातकाः॥

अर्थात् अनुमति देने वाले, प्राणी के अङ्ग पकड़ने वाले, मारने वाले, बेचने वाले, खरीदने वाले, पकाने वाले, चुराने

वाले और खाने वाले सभी "घातक" या "कातिल" हैं। इसी ग्रन्थ में कुच्छ ऐसे भी श्लोक आते हैं जिन से पशु हिंसा की अनुमति मिलती है। इस प्रकार कुच्छ विरोध पूवक बातों का निर्देशन् इस उच्चस्तरीय ग्रन्थ में आना तो हमारी समझ से बाहर है। यदि कोई कहे कि हिंसा भी करनी चाहिए और अहिंसा पर भी डटे रहना चाहिए; सत्य भी बोलो और असत्य भी; साफ भी रहो और मैला भी, पवित्र भी बनो और अपवित्र भी — तो ऐसी परस्पर विरोधी बातें करने वाला या तो कोई 'धूर्त' हो सकता है या 'पागल'। निश्चय ही मनुमहाराज न तो धूर्त थे और न पागल ही। अतः स्पष्ट है कि कुछ वेदविरुद्ध और बुद्धिविरुद्ध श्लोकों का उनके पवित्र ग्रन्थ में उन लोगों द्वारा समावेश किया गया है जो या तो जन-बूझ कर हमारे धर्म को विकृत करने का षड़यन्त्र रच रहे थे या केवल पुस्तकीय ज्ञान रखने वाले कुछ पतित आत्माएँ थी जो किसी न किसी रूप में अपनी जिह्वा–लोलुपता को धार्मिक रूप देने के उतावले थे, वरन मनुजी ने स्पष्ट रूप से निर्देश दिया है :—

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति स पश्यति ॥

यदि हम अहिंसा धर्म पर न रहें, तो भला सब प्राणियों को हम "आत्मवत्" कैसे देख सकते हैं। रहा प्रश्न तथा-कथित कुछ देवताओं के प्राणिबलि स्वीकारने का, तो यह बात सर्वथा असम्भव है। यह बात मान्य है कि मानव भी आध्यात्मिक उन्नति करके देवता बन जाता है, किन्तु यह सर्वथा अमान्य बात है कि उन देवताओं को मनुष्य जीवन

के कुच्छ विकृत संस्कार भी साथ रहते हैं । मांस भक्षण, मदिरापान अथवा मैथुन करने के कुत्सित संस्कारों से छुटकारा पाए बिना कोई भी नर 'देवता' नहीं बन सकता । हाँ, यह बात निश्चित है कि कुछ लोग सूक्ष्मशरीरधारी कुछ आत्माओं को मांस बलि द्वारा प्रसन्न करके अपने कुछ स्वार्थ सिद्ध करवाते हैं । ऐसी आत्माएँ 'देवता' नहीं हो सकतीं भले ही उन्हें ऐसा ही नाम क्यों न दिया गया हो । इस लोक में भी चोर–ड़ाकू अपने "सरदारों" को "उस्ताद" या "गुरु" नाम से अभिहित करते हैं — किन्तु उनमें "आचार्य" या "गुरु" के गुण नहीं आ सकते । मांस बलि स्वीकार करने वाली आत्माएँ पतित, भूत-प्रेत या कश्मीरी भाषानुसार "तसरुफदार" हो सकती हैं परन्तु देवी-देवता कदापि नहीं । और हम सारस्वत्ब्राह्मण नामधारी, गायत्री मन्त्र से अभिशिक्त यज्ञोपवीत धारी "कश्मीरी - पण्डितों" को विशेष तौर पर ऐसी पतित आत्माओं का पूजन नहीं करना चाहिए ।

एक और उदाहरण भी प्रस्तुत है । आधुनिक जगत के सुप्रसिद्ध जीवन-मुक्त योगीराज योगानन्द को महासमाधि में प्रविष्ट होने के बाद अपने महान् गुरु, स्वामी युक्तेश्वर जी महाराज का सूक्ष्म शरीर में दर्शन - लाभ प्राप्त हुआ है । उन्होंने परलोक के विषय में प्रत्यक्ष — दर्शी के रूप में कुछ झटिल प्रश्नों का उत्तर दिया है । श्री योगानन्द जी ने उनसे पूछा – "गुरुदेव ! क्या सूक्ष्म जगत के अधिवासी कुच्छ खाते पीते भी हैं ?" ....गुरुदेव ने उत्तर दिया— "सूक्ष्म भूमियों पर समुज्ज्वल एवं किरणों के आकार की

शाक-सब्जियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। सूक्ष्मजगत के अधिवासी फल और शाक-सब्जी का आहार करते हैं और प्रकाश के उज्ज्वल फव्वारे से निःसृत और सूक्ष्म स्रोतों व नदियों में प्रवाहित अमृत का पान करते हैं। .... यद्यपि हिरण्य लोक - सदृश्य स्वर्गीय क्षेत्रों के अधिवासी भोजन की आवश्यकता से लगभग मुक्त हैं तो भी कारण-जगत की मुक्त-प्राय आत्माएँ उच्चतर और स्वतन्त्र स्थिति में रहते हैं, जिनका भोजन मात्र दिव्यानन्द है।" (योगी-कथामृत पृष्ठ ५९५) भला खुद ही अनुमान लगाइए कि उन से भी उच्चतर आत्माएँ जो देवी-देवता कहलाती हैं किस भोजन को पसन्द करती होंगी। यदि हम उदाहरण देने पर ही रहें तो सैंकडों नहीं, हजारों की संख्या में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। किन्तु जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि मैं कोई महान पण्डित या विद्वान होने का दावा नहीं करता। मैं तो एक साधारण सा गृहस्थी पुरुष हूँ, एक दूरस्थ ग्राम का निवासी हूँ और साधारण आय एवं आचरण वाला आदमी हूँ। जो कुछ भी दैवकृपा से पढता - समझता हूं उसे अपने जीवन में सर्वप्रथम प्रत्यक्ष-रूप देता हूँ। अतः एक साधारण और अकिंचन प्राणी के रूप से सब धर्मों के महान पण्ड़ितों, वक्ताओं, धर्मगुरुओं, उपाधिधारियों एवं विद्वानों से नमन् करने के उपरान्त विनम्र भावना से एक साधारण सा प्रश्न पूछता हूं — कि परम-पिता परमेश्वर या पराशक्ति जगदम्बा, जो नाना देवी-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं और चराचर के पिता-माता कहलाते हैं किस प्रकार अपने ही सन्तानों के द्वारा अर्पित अपने ही कनिष्ट संतानों की मांसबलि स्वीकार करते हैं ? क्या ऐसा

करके उनका मातृ-पितृ पद सुरक्षित रह सकता है ?"

इस प्रसङ्ग को समाप्त करते हुए मैं एक और विनम्र निवेदन करूँगा कि धार्मिक विश्वास या आदेश को सिद्ध करने के लिए बडे-बडे ग्रन्थों का हवाला देने से श्रेष्ठतर रीति यही है कि प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा उसकी परख की जाए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि मांसाहारी या मांसबलि चढाने वाले व्यक्तियों को स्वयं ही किसी प्राणी को काटने के लिए कहा जाए तो कदाचित निनानवे प्रतिशत लोग सहज रूप में ही ऐसा कुकृत्य छोड़दंगे। बनारस के ईशोपलब्ध सुप्रसिद्ध गृहस्थी परम योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय अपने प्रवचनों में कहा करते थे .... "केवल वही बुद्धिमान हैं जो शास्त्रों के केवल पठन-पाठन में समय न गँवाते हुए उनके सारभूत सत्य को आत्मसात कर प्रत्यक्ष जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं। अपनी-अपनी समस्याओं का ध्यान के द्वारा ही समाधान प्राप्त करो"। (योगी-कथामृत पृष्ठ ४६९) एक फारसी कहावत है — "मोटे मोटे ग्रन्थों के अम्बार में नहीं, बल्कि ध्यान में सत्य की खोज करो। चन्द्रमा को सीधे आकाश में देखो, तालाब में नहीं।" अतः मांसाहारियों से मैं पुनः निवेदन करूँगा कि वे सब प्राणियों के कष्टों को स्वयं अपने शरीर में अनुभव करने का प्रयास करें। यदि वे स्वयं सूई की चुभन तक भी सहन करना नहीं चाहते तो अन्य प्राणियों को, अपनी जीह्वा के विकृत स्वाद की तृप्ति के लिए, मारने के लिए नए नए आविष्कार क्यों करते हैं। कभी देवी-देवताओं को बलि चढाने का बहाना बनाते हैं, तो

कभी इन असहाय प्राणियों को स्वर्ग भिजवाने की भौंडी कल्पना करते हैं। हिंसा तो हिंसा है। कातिल कत्ल करने के कुकृत्यको कभी 'हलाल' नामके अन्तर्गत छिपाता है, कभी "झटका' के नाम के अन्तर्गत और कभी देवी-देवताओं को "बलि अर्पण' करने के अन्तर्गत। यदि धार्मिक ग्रन्थों का ही आदेश सर्वोपरि है तो वेद भगवान का स्पष्ट आदेश है कि— पशु हिंसा करने वाला भयानक पाप-कर्मी यदि समझाने पर भी इस अन्याय से विरत नहीं होता और पशुघात करता है तो इस घोर पाप के लिए उसका शिरच्छेद ही करना चाहिए।

"या पौरुषे छैण क्रविधा समंकतो यो अश्वयेन पशुना यातुधानः।
यो अन्याया भरति धीरमग्ने, तेषां शीर्षाणि हरसापवश्च ॥"

(ऋ०-१०-८७-१६)

क्या इसके अतिरिक्त भी कोई और आदेश आवश्यक है? मैं हैरान होता हूँ कि मानव-बुद्धि को क्या हो गया है? मानव और दानव में केवल इतना ही भेद है कि दूसरों को सुख पहुँचाने वाला मानव है, और दुःख पहुँचाने वाला दानव। हिंसा किसी भी नाम से की जाये, वह हिंसा ही है, कत्ल है। यदि किसी दर्शन या धर्म में "कत्ल" को भी पुण्य कर्म माना जाये तो पाप कर्म फिर क्या हो सकता है?

प्रसङ्ग '३' समाप्त

"ब्रह्मी-महूर्त पर उठकर, शौच से निवृत्त होकर, शुद्ध आसन पर बैठकर, ईश्वर का ध्यान करने से मन शुद्ध होता है।"

प्रसङ्ग ४

अहिंसा और हमारे तीज़-त्यौहार

हमारे तीज-त्यौहारों में ये सभी पर्व आते हैं :—

परमपिता के विभिन्न देवी-देवताओं के रूप से सम्बद्ध त्यौहार जैसे जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, दीपावली; विभिन्न प्रकार के व्रत जैसे एकादशी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावस्या, सक्रांति इत्यादि; विभिन्न पितरों के श्राद्धदिवस, संस्कार प्रदायक त्यौहार जैसे, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह और दाहसंस्कार इत्यादि; सामाजिक त्यौहार जैसे भाई–दूज, रक्षाबन्धन, होली, जन्मदिवस इत्यादि तथा और कई प्रकार के प्रीति-भोज के त्यौहार जैसे वाग्दान, ग्रहशांति, नए काम का शुभारम्भ, शङ्कु-प्रतिष्ठा इत्यादि तथा चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के निमित्त धार्मिक त्यौहार जैसे जप, तप, यज्ञ, पूजा-पाठ और चान्द्रायण व्रत आदि आदि ॥ ये सभी तीज-त्यौहार मनाने का एकमात्र कारण है "आत्मोद्धार" । हम प्रत्येक दशा में अपना "मङ्गल" चाहते हैं न कि अपना "अमङ्गल" । और हमारे समाज के सर्वोत्तम विधायक "मनु" महाराज ने आदेश दिया है— "आत्मवत् सर्वभूतेषु" अर्थात तमाम प्राणियों को अपने समान ही समझना । यदि हम इसी बात को अपना आदर्श मान लें और उसी के अनुरूप कार्य करना आरम्भ करें तो सब प्राणियों का उद्धार होगा । इस प्रकार हमारा

अपना भी उद्धार होगा क्योंकि हम भी तो उन्हीं में गणित किए जाएँगे। इसी कारण से युगों युगों से चली आरही हमारी प्रार्थना है — "सर्वे भवन्तु सुखिन:"। अत: उपरोक्त रीतिरिवाजों तथा तीज-त्यौहारों में हर समय हमें अहिंसा व्रत का पालन करना चाहिए। जन्मदिवस पर या विवाहोत्सव पर या अन्य किसी सामाजिक पर्व पर हम अपनी और अपने प्रियजनों के लिए मङ्गल कामना करते हैं। किन्तु इन अवसरों पर यदि हमने किसी अन्य प्राणी को कष्ट पहुँचाया या किसी को मार डाला तो भला परमपिता परमेश्वर किस प्रकार हमारी मनोकामना पूरी करेगा ? क्योंकि यदि बड़ा भाई किसी भी प्रकार अपने छोटे भाई को कष्ट दे तो पिता कभी संतुष्ट नहीं हो सकता। संसार के व्यवहार में भी तो देखा गया है कि कनिष्ठ संतान् माता-पिता को अधिक प्यारा होता है। हम विवाहोपरान्त वर-वधू की शङ्कर-पार्वती या विष्णु-लक्ष्मी के रूप में पुष्प-पूजा करते हैं। तो भला बताइये उसके उपरान्त क्या उन्हें मांस खिलाना युक्तियुक्त है ? इसी प्रकार यज्ञोपवीत जैसे ब्रह्मयज्ञ के उपरान्त "कुशलहोम" अर्थात् सबकी कुशलता के लिये एक छोटा सा यज्ञ किया जाता है। कितनी विडम्बना है कि इस पर्व पर मूर्खतावश कुछ लोग मांस-भोजन का प्रबन्ध करते हैं। जन्मदिवस मनाने का एकमात्र अभिप्राय यही है कि उस व्यक्ति की शुभाकाङ्क्षा कीजिए। किन्तु इस पर भी यदि हम प्राणी हिंसा के भागी बनें तो शुभाकांक्षा कैसे फलीभूत हो सकती है। ये तो साधारण सी बातें हैं जिन्हें साधारण बुद्धिवाला भी आसानी से समझ सकता है। यदि हम मन की गहराई

से ज़रा चिन्तन करें तो स्पष्ट दिखाई देगा कि उपरोक्त त्यौहारों पर जब प्राणिहिंसा का भयानक पाप साथ रहता है तो परिणाम इष्ट के बदले अनिष्ट ही होता है ।

अब रहे देवी-देवताओं के त्यौहार । तो जैसे मैंने पहले ही बता दिया है कि सब से बडा देवी-देवता तो परम-ब्रह्म स्वयं ही है । वह तो निराकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक और सब प्रकार के शुभगुणों से परिपूर्ण है । वह तो लिङ्ग, वचन और विभक्ति से सर्वथा अछूना है । हम अपनी सुविधा के लिए उसके विभिन्न प्रकार से नामकरण करते हैं । उसके सभी नाम विभिन्न गुणों के अनुरूप दिये गये हैं। सभी धर्म-मतावलंबी उसे 'केवल' अर्थात अकेला मानते हैं । यह विचार तो सब से पूर्व सनातन धर्म ने ही दिया है । ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि :—

इन्द्रं-मित्रं–वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान् ।
एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति अग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋ० सू० १६४ मं० ४६ सं० १)

इतना ही नहीं यजुर्वेद भी कहता है :—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताः आपः स प्रजापति ॥
(यजु० अ० ३२ मं १)

क्या इसके अतिरिक्त भी किसी और प्रमाण की आवश्यकता है ? उसी एक परमात्मा को हम देवी या देवता इसलिए मानते हैं

क्योंकि उसका वह नाम व्याकरण के अनुसार पुलिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग के अन्तर्गत आता है। यही कारण है कि नारायण, विष्णु, शिव, शङ्कर, गणेश, कृष्ण, राम, ब्रह्मा, सूर्य, मित्र, वरुण, कुबेर, भैरव, इत्यादि देवता माने गये हैं, क्योंकि संस्कृत व्याकरण में ये पुंलिङ्ग (Masculine) में प्रयुक्त होते हैं और शक्ति, माया, सीता, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, मङ्गला, दुर्गा, सावित्री, शारदा, शारिका, शिवा, ज्वाला राज्ञा इत्यादि देवियां मानी गई हैं क्योंकि व्याकरण में ये सभी स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होती हैं। वरन यह सभी एक मात्र "केवल" के नाम हैं। जिसे वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, शैव परमशिव कहते हैं और शाक्त परमेश्वरी कहते हैं। यथा—

"यं शैवा; समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनों
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटव: कर्त्तेति नैयायिका: ।
अर्हन्नित्यथ जैन शासन रता: कर्मेति मीमांसका:
सोयं वो विदुधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरि"

सन्त कबीर ने भी इसी कारण कहा है—

"साहब मेरा एक है, दूजा कहा न जाए ।
दूजा साहब जो कहूं तो साहब खरा रिसाइ ।।"

मुसलमान उसी को "अल्लाह" बोलते हैं। सिख 'गुरु' 'तथा ईसाई-यहूदी' गॉड़ (God)। परमज्ञानी इसी को 'ॐकार' के नाम से अभिहित करते हैं। तथा योगी लोग इसी को निर्विकल्प समाधि में 'प्रकाश' रूप में देखकर इसी के साथ स्वात्मा को लय करते हैं। इस को 'एक' रूप में जानने वाला

और तदनुरूप व्यवहार करने वाला ही ज्ञानी है और इसके विपरीत "अनेक" समझने वाला अज्ञानी है । जिस प्रकार अग्नि से विभिन्न चिंगारियां निकलती हैं उसी प्रकार 'परमात्मा' से ही सभी 'आत्माएँ' निकलती हैं । और जन्म-जन्मान्तरों के कर्मफलानुसार विभिन्न शरीर धारण करते हैं । इसी 'ब्रह्म' को हम सब परमपिता परमेश्वर कहते हैं या पराशक्ति जगदम्बा (जगत्‌माता) । सभी प्राणी उन्ही के अंश हैं या पुत्र-पुत्रियां हैं ।

अब रही 'बलि' की बात । बलिदान स्वयं अपना आप अर्पण करना होता है । महान् देश-भक्तों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अपने जीवन का बलिदान दिया । हरिश्चन्द्र जैसे महान दानियों ने अपने धन-दौलत का बलिदान दिया । दूसरे प्राणियों के उपकारार्थ बडे बडे विद्वान विद्या का 'दान' देते हैं । यदि वे ऐसा निस्वार्थ भावना से करते हैं तो यह भी बलिदान कहलाता है । साधक लोग ईश-प्राप्ति के लिए अपने एशो-आराम का "बलिदान' देते हैं । सर्वोत्तम 'बलिदान' तो अपने-आप में स्थित उन मनोभावनाओं तथा इच्छाओं का त्यागना है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के नाम से जाने जाते हैं । इसके विपरीत दूसरे प्राणियों को काटना तो घोर पाप और विनाशकारी कृत्य है । इसी कारण शिवरात्रि जैसे उच्चकोटि के धार्मिक पर्वों पर कदापि मांस बलि का प्रयोग नहीं करना चाहिए । आखिर हम मांस बलि किसको देते हैं ? क्या "वटुक–भैरव" को ? यह "वटुक-भैरव" क्या होता है ? क्या यह भूत–प्रेतों के समान् पतित आत्माएँ हैं जो चाण्डालों या हिंस्र पशुओं की तरह मांस–भक्षण करते हैं ? यदि ऐसी

बात है तो ये शिव-शङ्कर के साथी या 'गण' किस प्रकार हो सकते हैं ? व्यावहारिक संसार में भी तो कोई सज्जन किसी दुर्जन को अपनी मित्र-मण्डली में सम्मिलित नहीं करता । "मनुष्य अपनी सङ्गति से ही पहचाना जाता है" यह एक सर्वमान्य तथ्य है । 'कलाली' के हाथ में अमृतरूप दूध भी 'मदिरा' समझा जाता है । कुसंग तो सब से महान अनर्थ माना जाता है और सत्सङ्ग सब से बडा द्रव्य । गोस्वामी तुलसीदास जी ने सुसङ्गति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और कहा है — "बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई" तो यह निर्विवाद सत्य तो "शङ्कर" पर भी चरितार्थ होता है। मांस-भक्षी भूत-प्रेतों को वे कदापि अपने सङ्गी-साथी नहीं बना सकता। यह तो कुच्छ मनुष्यों ने ऐसा मान लिया है, केवल भ्रमवश या अज्ञान के कारण । "शङ्कर" तो 'शम्' अर्थात् कल्याण करने वाला है न कि किसी भी प्राणी का अमङ्गल ।

यहां संक्षेप में उस पौराणिक कथा का वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है जिस ने "वटुक भैरव" को जन्म दिया है । कहते हैं कि किसी युग में भगवान शङ्कर को परमेश्वरी पार्वती के साथ रमण करने की इच्छा हुई । उस समय पार्वती अपनी सहेलियों के साथ वन प्रदेश में क्रीड़ा कर रही थी। "शङ्कर" ने समाधि द्वारा उसका पता लगाया और केवल खेला करने की इच्छा से "भैरव" का विचित्र रूप धारण किया । पार्वती ने जब उस भयानक प्राणी को देखा तो सामने पडे हुए पानी के घडे पर उसकी दृष्टि पडी। इच्छा-शक्ति से उस घडे में से एक वीर बालक की उत्पत्ति हुई जिसे उसने

भैरव को परास्त करने की आज्ञा दी । अध्यात्मिक रूप में तो इसका कुछ और ही अर्थ हैं, चलो व्यावहारिक रूप से ही इस कथा को लेलें । पानी के घडे को संस्कृत भाषा में 'वटु' बोलते हैं और उसमें से उत्पन्न होने वाले को 'वटुक' कहते हैं । इस प्रकार एक सुन्दर वीर बालक का पर्याय ही "वटुक" बन गया । भैरव तो स्वयं शङ्कर ही बन गए थे, जिस प्रकार नाटक में कोई अभिनेता किसी दूसरे व्यक्ति का अस्थाई रूप से "रूप" धारण करता है । तो इस कथा से भी "वटुक" या "भैरव" को मांस बलि चढाने का कारण कहां से उत्पन्न हुआ ? पार्वती का क्रोध निवारण करने के लिए आशुतोष शङ्कर ने उसे वरदान दिया कि स्वयं उसकी अर्थात् "शङ्कर" को पूजा में पार्वती के "मानसपुत्र" "वटुक" की भी पूजा हुआ करेगी, वरना वह पूजा अधूरी मानी जायेगी । अज्ञानियों ने मानसपुत्र "वटुक" और "भैरव" रूप शङ्कर को भूत-प्रेतों की संज्ञा दी ।

इसी प्रकार पराशक्ति परमेश्वरी के विभिन्न नामों की वास्तविकता को न समझने के कारण अर्थ का अनर्थ किया गया है। शिवा, शारिका और मङ्गला तो उसी एक जग-ज्जननी के नाम हैं जिसे दुर्गा भी कहते हैं और राज्ञा भी, जिसे ज्वाला भी कहते हैं और सरस्वती भी । पापी, असुरों दैत्यों तथा राक्षसों का हनन करने के कारण उसे "महिषा-सुर मर्दिनी" या "दैत्य–दलिनी" कहा जाता है, नकि 'महिषा-सुरभक्षिणी" या दैत्यखादिनी' । क्षणभर के लिए यदि हम यह भी मान लें कि प्रतीकरूप में मर्यादा पालन करने के लिए प्राणि-बलि दी जानी चाहिए, तो यह बलि उन हिंसारत

पशुओं की दी जानी चाहिए थी जो स्वभाववश अन्य प्राणियों का नाश करते हैं । जैसे बिल्लियां, सिंह, चीते, भालू इत्यादि की, नकि निष्पाप और शरीफ शाकाहारी प्रणियों की । प्रतीक रूप में तो इसका एक मात्र अभिप्राय था अपने शरीरस्थ "कुप्रवृत्तियों" को दमन करनेका । इस साधारण सी बात को न समझकर या जान बूझकर अर्थ का अनर्थ करके धूर्त-प्रकृति के पण्ड़ितों और अज्ञानियों ने 'परवरदिगार' को 'नायदयार' बना दिया है । इसे देखकर हंसी भी आती है और रोना भी । हंसी इसलिए आती है कि मायाजाल में फंसकर दुष्ट प्रकृति या स्वभाव वाले बडे बडे उपाधिधारी और विद्वान अपने को पण्डित समझ बैठे हैं और रातदिन सैंकडों पुस्तकों को पढकर बाल की खाल उतार कर प्राप्त हुए शब्दाडम्बर और लम्बी-चोड़ी वक्तृताओं को ही अपने जोवन की इति-श्री मानते हैं । और वकीलों की भांति अपनी झूठी या सच्ची निष्ठा को येनकेन प्रकारेण सिद्ध करना ही अपना लक्ष्य मानते हैं । और रोना तो इसलिए आत है कि क्या हम उन ही ब्रह्म-निष्ठ मन्त्र-द्रष्टा ऋषि मुनियों की संतान कहलाने के अधिकारी हैं जिनका नाम अभी भी गोत्र रूप में हमारे नामों के साथ जुड़ा हुआ है । और जिनका नाम लिए विना हमारी कोई भी धार्मिक क्रिया सम्पूर्ण नहीं समझी जाती । प्रसङ्गवश यहां मुझे उस पौराणिक कथा का भी स्मरण आता है कि पाण्डवों ने जब अश्वमेध यज्ञ रचाया था तो संसार भर के महान आचार्यों, पण्ड़ितों और पुरोहितों द्वारा एक धार्मिक व्यवधान दूर न हो सका । तब योगिराज श्रीकृष्ण ने कश्मीर निवासी एक साधारण से किसान-कर्मी ब्राह्मण को बुला भेजा ।

जिसने आकर तात्कालिक महान आश्चर्य के रूपमें उस व्यवधान को दूर किया था। ऐसा था कश्मीर का एक साधारण सा कृषि-कर्मी ब्राह्मण। तो अन्य जाने-माने विद्वान–पण्ड़ित कैसे हुआ करते थे, इसको सहज ही कल्पना की जा सकती है। कितनी विड़म्बना है और कितने कष्ट को बात है कि उन्ही की सन्तान होकर हमारी कितनी दुर्दशा हो गई है। ऐसा लिखते हुए मुझे महान कष्टका अनुभव हो रहा है। यहां के विद्वान, पण्डित, व्याख्याता एवं धर्मगुरु मुझे क्षमा करें, क्योंकि मुझे किसी भी प्रकार उनका उपहास या अनादर करने की तनिक भी इच्छा नहीं। मैं तो ऐसा दुस्साहस करनेका विचार मात्र भी नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे पूर्णरूप से इस बात का अनुभव है कि मैं एक साधारण सा पढा-लिखा, एक अकिञ्चन ग्रामीण - गृहस्थी पुरुष हूँ जिसे लोक व्यवहार का अधिक अनुभव भी नहीं है और न किसी प्रकार का धार्मिक आदेश देने का ही अधिकार है। मेरा अन्तर्मन व्यथित होकर आर्त्तनाद कर रहा है और उसी कारण कुच्छ कटु परन्तु सत्य–वचन लेखनी से निकल गए हैं। यहां मैं अपने निजी जीवन का कुच्छ अनुभव भी लिखना आवश्यक समझता हूँ। हमारे पूर्वज भी इस प्रकार की कुरीतियों में लिप्त थे। जब मैं ने थोडे से आत्मज्ञान के बल पर तथ्य समझ लिया और मुझे कुछ दखल देने का अधिकार प्राप्त हुआ तो मैं ने अपने घर में ऐसी तमाम दुष्ट रीतियों को समाप्त किया। उपरोक्त तमाम त्यौहारों पर मांस बलि का तो प्रश्न ही नहीं मांस भक्षण भी त्याग दिया है। और ऐसा करके किसी भी प्रकार का कोई अनिष्ट नहीं हुआ

अपितु परमपिता परमेश्वर के अनुग्रह से जीवन की बहुत सी उलझनें स्वतः ही सुलझ गईं। यह मैं केवल मात्र इसलिए लिख रहा हूँ ताकि अन्धविश्वासों में फंसे हुए मेरे दूसरे बन्धुओं का भी किञ्चिन्मात्र मार्ग दर्शन हो सके। अन्ध-विश्वासों पर आधारित रीतिरिवाजों की जकड़ इतनी दृढ है कि कुच्छ महानुभावों ने विकृत और उपहासजन्य रीतियों को अपनाया है। उदाहरणार्थ कुछ पण्ड़ित घराने शिवरात्रि के उपरान्त "बटुक-प्रमोचन" पर शङ्कररूपी मिट्टी के घडे को भी फोड देते हैं, क्योंकि किसी समय उनके किसी पूर्वज को ठोकर लगने से घड़ा टूट गया था जिसे अपशकुन की निशानी माना जाता था, किन्तु भाग्यवश वह वर्ष उनके लिए हर प्रकार से मङ्गलमय सिद्ध हुआ। अतः इसी बात पर घडा तोडने की रीति अपनाई गई। जब जब वास्तविक ज्ञान का लोप होता है और बुद्धि कुसंस्कार एवं कुसङ्गवश उचित निर्णय नही ले सकती तब २ ऐसे ही अन्ध-विश्वासों का जन्म होता है। अतः मैं डंके की चोट सब को बता देना चाहता हूँ कि मैंने घर पर मांस-मछली-बलि को सर्वथा त्याग दिया। पौष मास में गृह-देवता को "गाड़-बत्त" अर्थात् मछली-भोजन' के बदले पवित्र "क्षीर" अर्पण करता हूँ। और प्रत्येक त्यौहार पर मांस का प्रयोग बन्द कर दिया है। यहां तक कि अपनी इष्टदेवी "ज्वाला" भगवती को भी केवल अक्षत-पुष्प युक्त "तहर" अर्थात् पीला-भात भेंट करता हूँ और अन्तर्मन से अनुभव करता हूँ कि माता भगवती इसे प्रसन्न मन से स्वीकारती है। मैं ने स्वप्न में भी यह अनुभव नहीं किया

कि माता लाठी लेकर मेरे पीछे पड़ी हो कि मैं ने रीति बदलने का साहस कैसे किया। अतः मेरी यह बन्धुओं से सविनय प्रार्थना है और पण्डितों एवं धर्मगुरुओं से विनम्र निवेदन है कि वे कुरीतियों को समाप्त करने में यथायोग्य योग दें और पुण्य के भागी बनें। अन्यथा हमारा समाज, जाति और धर्म उपहासमात्र बन जायेगा और विधर्मी जो इस समय हिन्दू-धर्म पर प्रहार करने के लिए घात लगाए बैठे हैं, अपने कुप्रयास में सफल हो जायेंगे। हमारे पास अहिंसा रूपी एकमात्र हथियार है जो हरप्रकार के विघ्नों, विधर्मियों एवं दुष्ट - दानवरूपी शत्रुओं से हमारी रक्षा करने में सक्षम है। हमारे पास "अहिंसा परमोधर्मः" रूपी एक-मात्र ऐसा आदर्श है जिसके बल पर हम आज भी सनातन धर्म को संसार के अन्य सम्प्रदायों के धर्मों से उत्तम सिद्ध कर सकते हैं। इतना ही नहीं हिन्दूधर्म के माननेवाले विभिन्न मत-मतान्तरों में अहिंसा ही प्रबलतम् आदर्श है जो सब मतावलम्बियों के लिए सर्वमान्य हो सकता है। हिन्दुओं के विभिन्न पन्थों, सम्प्रदायों, आचरणों एवं विश्वासों को मानने वाले लोगों को संगठित करने का 'विश्व-हिन्दू-परिषद्' जो स्तुत्य प्रयास कर रहा है, अहिंसा का आदश उन्हें सर्वोत्तम आदर्श का काम दे सकता है, जो सब को एक सूत्र में बान्धने में समर्थ है। और सब से बढकर यह आदर्श हमें परमात्मा से तादात्म्य कराने के लिए अत्यन्त सरल एवं विश्वसनीय 'मन्त्र' का सफलता पूर्वक काम दे सकता है। अहिंसा व्रत के द्वारा ही हम अपने सर्वोत्तम आदर्शों को

कायम रख सकते हैं जो इस प्रकार हैं :- "वसुधैव कुटुम्बकम्"

"परोपकाराय सतां विभूतय:"

"सर्वे भवन्तु सखिन:"

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "सोऽहं"

इत्यादि, इत्यादि ॥

★

"प्रातः काल 'गायत्री' महामन्त्र का जप करने से विवेक की उत्पति होती है।"

★ ★

"महागायत्री जप से मानसिक शुद्धि होती है। मानसिक शुद्धि से सत्वगुण की वृद्धि होती है। सत्वगुण की वृद्धि से अहिंसा भाव जागृत होता है।"

★ ★ ★

"अहिंसा-भाव की प्राप्ति के लिए गायत्री जप अवश्य करें।"

★ ★ ★ ★

"प्रातः काल गायत्री-मन्त्र का जप करना कभी न भूलिए।"

★ ★ ★ ★ ★

"शुद्ध-आसन पर बैठ कर (कम से कम एक माला) गायत्री-जप करना अत्यन्त हितकर है।"

प्रसङ्ग ५

"अहिंसा एवं मानव स्वभाव, रचना एवं स्वास्थ्य"

परमपिता परमात्मा तो सब से महान निर्माता हैं। प्राणि-शास्त्री विज्ञान द्वारा जिन तथ्यों को प्राचीन काल से खोजते आरहे हैं, उस सम्पूर्ण ज्ञान को मन्त्र-दृष्टा ऋषियों के द्वारा परमात्मा ने वेदों के रूप में हमारे सामने सृष्टि-रचना के समय ही पथप्रदर्शन के लिए प्रस्तुत किया है। इसी ज्ञान के आधार पर प्राणियों की चौरासी लाख योनियां निर्धारित की गई हैं। प्रत्येक योनि का आकार, प्रकृति, स्वभाव एवं जीवन प्रक्रिया अलग २ हैं। किन्तु मानव के अतिरिक्त, शेष तमाम प्राणियों के कुछ नियत जीवन-नियम होते हैं। वे उनसे न ऊपर ही उठ सकते हैं और न नीचे ही आ सकते हैं। क्योंकि यह सभी भोग-योनियां हैं। उन में बुद्धि उस अर्थ में नहीं होती जिस अर्थ में मनुष्य में होती है। पशुओं और पक्षियों में देखा गया है कि खाना, पीना, सोना, दौड़ना बच्चे उत्पन्न करना और उनको नियत समय तक ही पालना इत्यादि सब विशेष नियम के अनुसार होता है जिसे भगवान ने निर्धारित किया है। मानव एक मात्र ऐसा प्राणी है जो स्वतन्त्र रूप से मनन-चिन्तन शक्ति रखता है और उसी

विवेक के बल पर अपने कार्य-कलापों में इच्छानुसार परिवर्तन भी कर सकता है।

किन्तु एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि इस प्राणि-विज्ञान के आधार पर हम मानव स्वभाव एवं प्रकृति का भी विश्लेषण कर सकते हैं। मोटे तौर पर दो प्रकार के प्राणी बनाए गए हैं। एक वे जो दूसरे प्राणियों पर निर्भर करते हैं और मांस-भक्षी हैं। दूसरे वे जो अन्य प्राणियों के मांस को सूँघते भी नहीं और वनस्पतियों पर ही निर्भर करते हैं। ऐसे प्राणी शाकाहारी कहलाते हैं। इन दो प्रकार के प्राणियों की रचना में कुछ विशेष प्रकार के साम्य दृष्टिगोचर होते हैं। मांस-भक्षी प्राणियों के दांतों की रचना ऐसी होती है कि वे दांतों की सहायता से दूसरे प्राणियों का शिकार कर सकें। प्राय: ऐसे प्राणी जिह्वा से पानी पीते हैं और उनके बच्चे बिना सिखाए ही दूसरे प्राणी पर झपट पडते हैं। कुत्ते, बिल्ले, शेर, भालू आदि पशु, इसी वर्ग में आते हैं। अधिकतर पक्षी भी कीटाणुभक्षी होते हैं और उनकी चोंच भी इसी के अनुरूप होती है। आप बिल्ली के बच्चे को जन्म के बाद से ही अलग पालन कीजिए और अन्य किसी भी बिल्ली के साथ उसे मिलने न दीजिए। जब वह बड़ा हो जायेगा तो स्वभावत: चूहों और पक्षियों को देखकर उनको मारने के लिए दौडेगा और उन्हें खाएगा। यह तो उनका प्राकृतिक स्वभाव है।

इसके विपरीत कुछ अन्य प्राणी हैं जो शाकाहारी हैं। आप कोशिश करके उनके सामने अन्य प्राणी का मांस रखिए,

वे कदापि नहीं खायेंगे सूंघकर ही छोडदेंगे । उन शाकाहारी प्राणियों के दांत इस प्रकार के होते हैं जो घास-फूस चबाने के लिए पर्याप्त हैं । वे प्रायः मुँह से लप-लप किए विना तथा जिह्वा को बाहिर निकाले विना ही पानी पीते हैं । इन प्राणियों में गाय, घोडा, भेड़, बकरी, मृग, वानर इत्यादि प्राणी आते हैं । ऐसे ही प्राणी स्वभावतः मनुष्य के लिए सहायक होते हैं, और मनुष्य भी इन्हीं का पालन करता है।

यदि इसी आधार पर हम मानव शरीर रचना एवं स्वभाव का विश्लेषण करें तो सहज ही हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि मानव की रचना शाकाहारी प्राणियों के जैसे की गई है । मानव शिशु स्वभावतः दूसरे प्राणियों को देखकर उनके साथ खेलना चाहता है और कदापि उनपर इस आशय से नहीं झपटता कि उनको मार कर खा जाए । उसके दांतों की रचना ऐसी है कि वह दांतों की सहायता से अन्य प्राणियों को नहीं मार सकता । अन्य प्राणियों का कच्चा मांस उसे पचता भी नहीं और वह भी जिह्वा निकाल कर लप-लप करके पानी नहीं पीता । यह तो संक्षेप में उन प्राकृतिक नियमों का वर्णन है जिनके आधार पर विभिन्न प्राकार के शरीरधारी प्राणियों की रचना हुई है इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि जन्म से मनुष्य शाकाहारी है, माँसाहारी नहीं ।

चूंकि मनुष्य में स्वतन्त्र रूप से चिन्तन-मनन करने की शक्ति है और वह अपने स्वभाव में परिवर्तन करने में सक्षम है, इसलिए उस को सर्वोत्तम प्राणी कहा गया है।

किन्तु इस पद को पाने के कारण उस पर बहुत सी जिमेदारियां भी ग्रा पड़ी हैं । प्राकृतिक नियम ग्रौर स्वभाव के ग्रनुसार उसे न केवल ग्रपना ही पालन करना है ग्रपितु ग्रन्य प्राणियों का भी । वह उन्नति ग्रौर ग्रवनति करने में स्वतन्त्र ग्रौर सक्षम है । वह चाहे तो नर से नारायण भी बन सकता है ग्रौर चाहे तो दानव या पशु भी बन सकता है । वह स्वयं ही ग्रपना शत्रु भी है ग्रौर मित्र भी । इसी कारण गीता जी में लिखा है:–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानं ग्रवसादयेत् ।
ग्रात्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

वह चाहे तो ग्राकाश में भी उड सकता है ग्रौर ग्रपने जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य ईश-लाभ भी प्राप्त कर सकता है, ग्रौर चाहे तो ग्रवनति के ग्रन्धे कुएँ में भी गिर सकता है ग्रौर जन्म-जन्मान्तरों के ग्रन्तहीन चक्रों में भकड़ा जा सकता है । यह स्वतन्त्रता ग्रन्य प्राणियों में नहीं है ।

बुद्धिमानी तो इसी में है कि मनुष्य उन्नति के पथ पर ग्रग्रसर होकर ग्रागे बढता रहे । यदि कोई इसके विपरीत ग्राचरण करे तो उसे हम मूर्ख कहते हैं । उन्नति क्या होती है ग्रौर किसप्रकार की जा सकती है ? यह देखने (जानने) के लिए हमें फिर शास्त्रकारों की सहायता लेनी पडेगी । शास्त्रों में "पुरुषार्थ चतुष्टय" को प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य माना गया है । इसी को उन्नति कहते हैं । इसके विपरीत ग्राचरण करने वाला ग्रवनत हो जाता है ।

ये चार पुरुषार्थ हैं :—

काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष। जो सदा एक दूसरे के, प्राकृतिक नियमानुसार, सहायक होते हैं। स्वभावतः मनुष्य में कामनाएँ उत्पन्न होती हैं। उनकी पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता पडती है। विशुद्ध साधनों द्वारा धनोपार्जन 'काम' की भी पूर्ति करता है और 'धर्म' की भी। और यह सब मिलकर 'मोक्ष' रूपी अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचा सकते हैं। प्रत्येक प्राणी शरीर से स्वस्थ रहना चाहता है, यह तभी सम्भव है जब हम सब प्राकृतिक नियमों का पालन करेंगे। पशु-पक्षी प्रायः प्रकृति के अनुसार ही चलते हैं, अतः उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है। उनका जीवन, विशेषकर उन प्राणियों का जिनमें मनुष्य हस्तक्षेप नहीं करता, सन्तुलित रहता है। उनमें न तो अधिकतर बीमारियां ही होती हैं और न उन्हें संख्या के बढने या घटने की ही समस्या होती है। मनुष्य भी जब तक प्राकृतिक नियमों पर चलता रहेगा, उसकी समस्यायें भी स्वतः ही सुलझ जाएँगी और वह स्वस्थ रहेगा। परन्तु जितना वह प्राकृतिक नियमों का उलङ्घन करेगा, उतना ही उसका स्वास्थ्य भी बिगडेगा और उसके लिए नाना पकार की समस्याएँ उत्पन्न होंगी। स्वास्थ्य को हमने प्रायः एकाङ्गी माना है। किन्तु वास्तविक रूप में वही स्वस्थ है जो शरीर से भी ठीक है, मन से भी और बुद्धि से भी। यदि इन तीनों में संतुलन रहे तो हम कह सकते हैं कि अमुक मानव स्वस्थ है। यदि यह सन्तुलन समान न हो तो उस व्यक्ति को कदापि स्वस्थ नहीं कहेंगे। पागल को कोई स्वस्थ नहीं कहता। इसी प्रकार जिसकी

बुद्धि ठीक काम न कर सके उसे मूर्ख या अज्ञानी कहेंगे। इस प्रकार हमारा स्वास्थ्य तब ही ठीक समझा जाएगा जब हम समान रूप से हर प्रकार उन्नति करेंगे । इसी को अन्ग्रेज़ी में कहते है "All round development," यह तभी सम्भव है जब हमारा आहार-विहार-विचार और कार्य शुद्ध हों। और प्राकृतिक नियमों के अनुसार हो। इन में प्रथम स्थान में हमें अपना आहार शुद्ध रखना चाहिए। कहा गया है :- "जैसा खाओ अन्न, वसा होवे मन" "अन्नम् मयो हि मनः" (उपनिषद्) । यदि हम प्राकृतिक नियमानुसार शाक-सब्ज़ी, फल, दूध एवं अनाजों पर ही निर्भर करें तो हमारा स्वास्थ्य सन्तुलित रहेगा । यदि नियमों में थोड़ी सी भी ढील आजाए तो रोग उत्पन्न होंगे, बुद्धि विपरीत काम करने लगेगी और स्वास्थ्य बिगड जाएगा । आप अपने अनुभव के आधार पर भी देखें कि मांस, मदिरादि मानवार्थ अप्राकृतिक वस्तुओं का सेवन करने से स्वास्थ्य का सन्तुलन बिगड़ जाता है । मांसाहार से न केवल पशु-वृत्तियां ही बढती हैं अपितु पशु शरीरों में प्राकृतिक तौर पर पलने वाले ऐसे कीटाणु भी मनुष्य शरीर में प्रवेश कर जाते हैं जिनकी चिकित्सा बाद में कठिन भी होती है और कभी २ असम्भव भी । आधुनिक समय में कैंसर, रैबोज़, सेप्टिकादि ऐसे रोग हैं जो पशु-जगत से मानव-जगत में प्रविष्ट हुए हैं । यों भी आप देख सकते हैं कि शाकाहारी मनुष्य मांसाहारियों से अधिक स्वस्थ होते हैं । आधुनिक जगत की जितनी भी बडी-बडी समस्याएँ हैं वे मांसाहारियों की पैदा की हुई हैं । इसी नियम के अनुसार बडे २ उन्नतशील राष्ट्र

ऐसे काम करते हैं जो मानवता का विनाश करते हैं। शरीर से भले ही वे स्वस्थ दिखाई दें, पर मन और बुद्धि से वे अवश्य बीमार हैं, अन्यथा बडे २ धनवान देश विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र उत्पन्न करने में न लगे हुए होते। अतः यदि संसार को विनाश से बचाना है तो मनुष्य को मांस-भक्षण छोडना ही पडेगा। क्योंकि अप्राकृतिक भोजनों में यही सब से अहितकर है जो मानसिक और बौद्धिक सन्तुलन बिगाड़ देता है। शारीरिक रूप से गांधी, विनोबा, कृपलानी आदि कितने ऐसे व्यक्ति थे जो कमज़ोर दिखाई देते थे किन्तु उनका सन्तुलित स्वास्थ्य अधिक उत्तम था, और उनका जीवन किसी के लिए अनिष्टकारी सिद्ध नहीं हुआ। वरन गांधी जी ने अहिंसा के आधार पर ही भारत को स्वतन्त्रता दिलाई तथा विनोबा जी ने इसी के आधार पर कई तस्करों, (डाकुओं) को हथियार छोडकर साधारण जीवन व्यतीत करने पर विवश किया। परन्तु अन्य देशों के "वैज्ञानिक" औरों के लिए, केवल नियम का उल्लङ्घन करने से, अनिष्टकारी सिद्ध हो रहे हैं। परिणाम स्वरूप संसार के किसी भी देश में सुख-शांति दिखाई नहीं देती है। अतः प्राकृतिक नियमानुसार मनुष्यों को शाकाहारी बनना चाहिए, क्योंकि निर्माता ने उसकी रचना इसी आधार पर की है। इसी नियम के पालने से उसका स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा कौर स्वभाव भी।

"प्रातः काल की प्रार्थना-चर्या में गायत्री-जप अवश्य रखें। गायत्री जप ही मानव-कल्याण है।"

प्रसङ्ग ६

अहिंसा और ईशोपासना

ईशोपासना प्रत्येक धर्म का अत्यन्त आवश्यक अङ्ग है। यह क्रिया सफलता पूर्वक तब ही सम्भव है जब हममें सन्तुलित भावना हो और हमारा मन एकाग्र हो । इसका अन्तिम लक्ष्य है ईश्वर के साथ तादात्म्य या उसका साक्षात्कार । इसी को 'योग' कहते हैं । 'योग' का शाब्दिक अर्थ है संयुक्त होना अर्थात् आत्माका परमात्माके साथ मिलाप होना। यह जीवित अवस्था में भी संभव है और मरणोपरान्त भी । जीवित अवस्था में इस की प्रत्येक आश्रम में आवश्यकता है, गृहस्थ आश्रम में तो इसकी नितान्त आवश्यकता है । क्योंकि इसी आश्रम पर संसार की आधारशिला अवलम्बित है।

इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम 'शौच' की आवश्यकता होती है। शुद्धि न केवल शारीरिक रूप से अपितु मानसिक और बौद्धिक रूप से भी परमावश्यक है। यह तभी संभव है जब हमारा 'आहार' विशुद्ध रूप से "सात्विक" हो । अपने भोजन में हमें दो प्रकार का परहेज (अपथ्य) करना नितान्त आवश्यक है। एक यह कि भोजन

में कोई ऐसी वस्तु न आ जाए जो किसी प्रकार का नशा पैदा करे। अर्थात नशावर (मादक) 'Intoxicants' वस्तुओं का सर्वथा अभाव होना चाहिए। और दूसरा यह कि भोजन हर प्रकार से पवित्र हो। इन्ही दो बातों को दृष्टि में रखकर प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में ऐसी वस्तुओं को अपवित्र घोषित किया गया है। शराब, अफ़ीम, भंग (चर्स), तम्बाकू इत्यादि (नशावर)मादक वस्तुएँ हैं, और चुराया हुआ, लूट लिया हुआ या अत्याचार अथवा बेईमानी से प्राप्त किया हुआ भोजन अपवित्र माना गया है।

यदि हम वैज्ञानिक या, आयुर्वेदिक आधार पर मांस की समीक्षा करें तो हम आसानी से यह समझ सकते हैं कि मांस में ऊपर वर्णित दोनों दुर्गुण विद्यमान हैं। इसकी तासीर (प्रभाव) नशावर (मादक) है, इसी कारण से मासाहारी को मांस-भक्षण के बाद मदिरा और मैथुनकी प्रबल इच्छा होती है। वैज्ञानिक शोधालयों में मांस में मादक (नशावर) तत्त्वों को सिद्ध किया जा सकता है। फिर जब हम अपवित्र वस्तुओं की जांच करें, तो हम देखेंगे कि मांस अर्थात 'मृत्त-शरीर' (Dead Body) सब से अपवित्र है। शरीर का महत्व तब तक ही है जब तक इस में प्राण कायम रहते हैं, प्राणों के निकल जाने पर यह मुर्दा बन जाता है और साधारण व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि मुर्दा तो मुर्दार अर्थात अपवित्र होता है। चाहे उसका प्राण-तत्त्व प्राकृतिक रूप से अलग हो जाए या लौकिक रूप से।

कितने दुःख और मर्खता की बात है कि कुछ लोगों ने अपनी जिह्वा-लोलुपता के लिए और इस जघन्य कृत्य पर पर्दा डालने के लिए मनघडत तरीकों का आविष्कार किया है। कुछ लोग देवी-देवताओं के लिए बलिदान का झूठा आवरण इस पर डालते हैं और कुच्छ लोग इस "कत्ल" को "हलाल" या "झटका" रीति से उसके शुद्ध होने का असफल प्रयास करते हैं। क्योंकि हर सूरत में प्राण-तत्त्व शरीर से निकल जाता है और वह मुर्दा या मुर्दार बन जाता है।

इस तथ्य को हम इस रूप में भी समझ सकते हैं कि यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए तो उस घर में "अशौच" (अपवित्रता) माना जाता है। यदि दूसरे घरों के लोग उन्हें सांत्वना देने जाएँ तो वे लौटने पर अपना मुंह-हाथ धोते हैं तब अपने घर में प्रवेश करते हैं। श्मशान में दाह-क्रिया के बाद स्नान इसी कारण आवश्यक है कि मृत-शरीर के दर्शन मात्र से जो अपवित्रता प्राप्त हुई है वह दूर हो जाए, वरना वहां किसी भूत-प्रेत का खतरा नहीं होता। शास्त्र-विधान के अनुसार यदि किसी भी प्राणी का मृत-शरीर दृष्टि-गोचर हो जाए तो स्नान करना चाहिए या कम से कम हाथ-मुंह धोकर कुल्ली करनी चाहिए। यह तो दर्शनमात्र की बात है। जब इसी मृत-शरीर का भक्षण ही किया जाए तो, भला स्वयं ही अनुमान लगाईए कि खाने वाला व्यक्ति किस प्रकार "शुद्ध" या "पवित्र" रह सकता है।

ऊपर वर्णित दो बातों का विचार तो सदा से सब धर्ममतावलम्बियों ने किया है। यही कारण है कि ऋषि-मुनि और तत्त्व-ज्ञानी लोगों का सात्विक आहार होता था, जिस में फल-मूल-कन्द शाक और दूध जैसी वस्तुएं होती थीं। एकादशी व्रतों पर तो अनाज को भी वर्जित किया गया है। और इसी कारण से अभ्यासी सिद्ध-पुरुष शाक सब्जियां भी सूखकर खाते थे। हिन्दू ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त आप मुसलमान, सिख और ईसाई धर्म मानने वाले सिद्ध-पुरुषों और ईशोपलब्ध महात्माओं का जीवन-चरित्र देखलें, वे भी साधना के समय कोई ऐसा भोजन नहीं करते थे जो अपवित्र होता था, या जिसमें नशा की कोई मात्रा पाई जाती थी।

यदि हम गम्भीरता से तथा पवित्र बुद्धि से मनन करें, तो हम देख सकते हैं कि हिन्दू-धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म भी स्पष्टरूप से "हिंसा" का निषेध करते हैं। सर्व-साधारण जनता के लिए दो चार उदाहरण देना समीचीन होगा, ताकि वे स्वयं वास्तविकता का अनुभव करें।:—
हिन्दूधर्म का मत तो इस पुस्तक के दूसरे प्रसङ्ग में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त भी वेद भगवान का एक उदाहरण देखिए:—

i) "हिंसा सर्वथा हेया" (यजु, १६,३)
ii) "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" (यजुर्वेद)
iii) "एक गाय या बैल का मारना, एक मनुष्य के वध के समान है। एक मेमने को मारना भी कुत्ते का गला

काटने के समान है।" (ईसाइयत्)

iv) "हरगिज़ नहीं पहुंचते अल्लाह के पास गोश्त और खून। पहुँचती है उसके पास तुम्हारी परहेज़गारी।" (कुरान-शरीफ सू० ६० हज)

v) "न तो पशुओं का खाना और न उनका शिकार करना ही यह हमारा जरदुश्ती नेक धर्म है।" (फिरदौसी)

v) "Violence negates the idea of civilization."
(Humaniterian Diet Page 124

vii) हिन्दू कर्मकाण्ड में उर्ध्वदैहिक (मरने के बाद) क्रिया-कर्म के विषय में सर्वोत्तम ग्रंथ तो "गरुड़ पुराण" है। इसमें यमदूतों द्वारा प्रताड़ित उन पापियों का वर्णन है जो दुर्गन्ध युक्त वैतरणी नदी में ड़ाल दिये जाते हैं। ऐसे पापियों में मांस-भक्षियों का स्पष्ट वर्णन है :—

"ब्रह्मकर्म परिभ्रष्टो, मांस भोक्ता च मद्यपः।
उच्छृङ्खल स्वभावोयः, शास्त्राध्ययन वर्जितः ॥"
(अध्याय ४ श्लोक २१)

इसी प्रकार ग्यारहवीं अध्याय के ३७ वें श्लोक में "कलौ न पल-पैतृकम्" लिखकर कलियुग में मांस पिण्ड देना सर्वथा वर्जित कहा गया है।

अतः मेरे प्रिय बन्धुओ ! आप स्वयं ही अपनी अन्त-र्दृष्टि द्वारा अनुभव कीजिए कि 'हिंसा' किसी रूप में करना कितना भयानक पाप है। इस से तो न हमारा स्वास्थ्य

ही ठीक रह सकता है और न कोई धार्मिक क्रिय-कर्म ही सिद्ध हो सकता है। साधारणतया आप स्वयं देखेंगे कि शाकाहारी लोग अधिक स्वस्थ होते हैं। उनका मानसिक और बौद्धिक सन्तुलन भी कायम रहता है, वे सद्गुणों से सम्पन्न भी होते हैं और बीमारियों के कीटाणु उन पर कम मात्रा में प्रभाव ड़ालते हैं। मांस-भक्षियों की तो इसके विपरीत दशा होती है। यही कारण है कि संसार के विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित ईशोपलब्ध महात्माओं में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा जिन्हों ने मांस-भक्षण या हिंसा' द्वारा सिद्धि प्राप्त की हो। हिंसा द्वारा पतित् प्रेतात्माओं को वश में किया जा सकता है, किन्तु परम-पिता परमेश्वर का साक्षात्कार या तादात्म्य लाभ कदापि नहीं हो सकता। इसी कारण से मेरे परम - आदर्णीय मित्र, एक प्रसिद्ध धर्माचार्य एवं विश्व हिन्दू परिषद के कश्मीर प्रान्तके प्राण श्रीमान् मोती लाल जी 'पुष्कर' महोदयने स्पष्ट रूप से स्वीकारोक्ति की है कि :—

"मैं अपने अन्तःकरण का अनुभव लिखना चाहता हूँ कि अहिंसक रह कर मुझे अपना आप 'प्रभु' के निकट दिखाई देता है, और मांस-भक्षण के समय पापकृत्य का भागी मैं अपने आप को अनुभव करता हूँ। ...... हमें प्रभु की अनुकम्पा प्राप्त करनी हो तो अहिंसक होना ही पड़ेगा।" (द्रष्टव्य परिशिष्ट) आधुनिक जगत के ईशोपलब्ध सुप्रसिद्ध योगी संत और लब्धप्रतिष्ठ शैवाचार्य ईश्वर स्वरूप श्रीमान् लक्ष्मण जी महाराज ने इन शब्दों में स्पष्ट आदेश दिया है :-

"मांस - भक्षरण की प्रथा कहां से आई है — यह मुझे समझ में नहीं आता। यह हमारी अनभिज्ञता है कि हमारे भाई इस घोर पाप के भागी बन रहे हैं। मैं मांस-भक्षरण की अनुमति नहीं दे सकता। पता नहीं आजकल के महान पण्ड़ितों को भी यह समझ नहीं आता कि हम क्या कर रहे हैं। ...... हमारे शैव शास्त्रों में भी लिखा है :—

न विवाहे पशुहन्यान्न चात्मार्थे कदाचन ।
याग कालेऽपिन हन्यान्नेष्ट बन्धु समागमे ॥

.........इत्यतः मैं हाथ उठाकर कहूंगा कि मांस भक्षण सर्वथा निषिद्ध है और इस मांस-भक्षण की प्रथा समूल नष्ट होनो चाहिए ॥ ॐ ॥ " (द्रष्टव्य परिशिष्ट)

क्या इसके अतिरिक्त भी किसी और प्रमाण की आवश्यकता है ? इस प्रसङ्ग का समापन करने से पूर्व मैं अपने बन्धुओं से निवेदन करूँगा कि वे साधारण रूपसे स्वयं देखलें कि शाकाहार के पदार्थों के मुकाबले में मांस कितना दुर्गन्ध युक्त एवं कीटाणुवर्धक है। यदि शाक-सब्जियां बहुत समय तक भी रखी जाएँ तो वे सड़ती नहीं। अधिक समय व्यतीत होने के बाद ही उन में विकार पैदा होता है और सड़ने पर भी उनमें से ऐसी दुर्गन्ध नहीं निकलती जो असहनीय हो। सड़ने पर ये वस्तुएँ भूमि के लिए उत्तम प्रकार की खाद (उर्वरक) का काम देती हैं। और उनमें ऐसे कीटाणु पैदा होते हैं जो साधारणतया अधिक विशैले नहीं होते। इसके विपरीत यदि किसी भी प्राणी का मृत-शरीर थोडे से

समय के लिए भी रखा जाए तो वह शीघ्र ही सड़ता है। चारों ओर असहनीय दुर्गन्ध फैलाता है । वैज्ञानिक रूप से देखा जाए तो उस में विषैले कीटाणु शीघ्र ही उत्पन्न होते हैं, जो खतरनाक (भयानक) बीमारियों का कारण बन सकते हैं । कदाचित इसी कारण सब धर्मावलम्बियों ने मृत-शरीर को शीघ्रातिशीघ्र अन्तिम क्रिया-कर्म करने का निर्देश दिया है ।

अतः यह निर्णीत हुआ कि ईश्वर – प्राप्ति के लिए भी "अहिंसा व्रत" चालन करने को अत्यन्त आवश्यकता है, और संसार में समस्त प्राणिमात्र को विषैली बीमारियों से बचाने के लिए भी हमें अहिंसक होना ही पडेगा ।।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । यो,द-२,३५
(अहिंसा की दृढस्थिति होने पर निकटवर्ती सभी प्राणी वैरभाव का त्याग कर देते हैं)

... ...

'अन्नं मय हि मनः" (जैसा अन्न वैसा मन)
सात्विक अन्न से सात्विक मन तथा तामसिक अन्न से तामसिक मन की प्राप्ति होती है ।

......

"मेध" शब्द 'मेधृ' धातु से बना है जिसका अर्थ संगमन-रूप प्रदर्शनी है। प्रदर्शनी वृद्धि अथवा उन्नति हेतु होती है। इस प्रकार गोमेध, अश्वमेध तथा नरमेध गौ, अश्व, नरादि वंश की उन्नति अथवा वृद्धि करना है, हनन् नहीं ।

उपसंहार

पाठक महानुभाव पिछले छः प्रसङ्गों का शुद्ध मन से पठन-मनन करने के उपरान्त इसी निर्णय पर पहुँच गए होंगे कि हिंसा सब पापों का मूल है। यदि हमें पाप राशि का समूल नाश करना हो तो हमें मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा-व्रत का पालन अवश्य करना चाहिए। इस व्रत का महत्व इसी बात से आंका जा सकता है कि यमनियमों में इसी को पहला स्थान दिया गया है। इसके बगैर शेष सभी व्रत पालन निष्फल हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अहिंसा न केवल हिन्दू-धर्म का ही, अपितु समस्त मानव-धर्म का मूलमन्त्र है और हर प्रकार की धार्मिक क्रियाएँ इसी पर आधारित हैं। यही कारण है कि समस्त मानव-जाति के ईशोपलब्ध महात्माओं एवं आचार्यों ने अहिंसा-व्रत-पालन पर अपने २ नियमानुसार अधिक बल दिया है।

अब प्रश्न यह है कि आधुनिक समय में जिन परिस्थितियों में हम फँस गए हैं, उनमें किस प्रकार इस नियम का पालन किया जाए। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति यह निष्ठा मन में कायम करे कि अहिंसा ही हमारा सर्वप्रथम धर्म है, वह अवश्य अपने उद्धेश्य में सफल होगा। आखिर जो व्यक्ति इसका पालन करते हैं, वे भी तो हम जैसे ही मानव हैं। शारीरिक रूप से उनमें कोई

अधिक अङ्ग है नहीं । हां उनमें एक गुण अधिक है और वह है दृढ-निश्चय। इसी के आधार पर वे मनके संकल्प को कार्यरूप में परिणत कर सकने की क्षमता रखते हैं। है तो यह सन्देश सारी मानवजाति के लिये, किन्तु प्रथम स्थान में मैं अपनी ही कश्मीरी पण्डित जाति से इसके पालन करने के लिए विनम्र अनुरोध करूंगा। क्योंकि जिसके घर में ही अन्धेरा हो वह मन्दिर में जाकर दिया क्या जलाएगा । कश्मीरी पण्डित नामधारी छोटी सी जाति को आत्मानुशीलन द्वारा अपना पद और स्थान देखना चाहिये, कि वे ऋषि-मुँनियों की सन्तान हैं। हर एक व्यक्ति के नाम के साथ गोत्र-रूप में किसी न किसी ऋषि-मुनि का नाम जुड़ा हुआ है । जो हमें पग-पग पर यह स्मरण दिलाता है कि हमें अपनी मर्यादा का पालन करना चाहिए । हम ब्राह्मणवर्ग में पैदा हुए हैं । ब्राह्मण "ब्रह्म" जानने वालों को कहते हैं — "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" ॥ हमें इस शास्त्र वाक्य को सार्थक करना चाहिए । वेद भगवान ने कहा है कि ब्राह्मण परम-पिता परमेश्वर का मुख होता है — ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्" । किन्तु महान कष्ट का विषय है कि यही ब्राह्मण आजकल विपरीत आस्थाओं के जाल में फँस कर, विपरीत रीति-रिवाजों में जकड़कर, अपने ब्राह्मणत्व को भूल चुका है । जिसका स्थान शीर्ष पर था वही अब पावों के जूतों तले बैठा हुआ है । धार्मिक रूप से हमारी ऐसी दुर्गति हुई है कि थोडा सा धार्मिक ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी हमें "ब्रह्मराक्षस" के नाम से पुकारने लगे हैं। किन्तु इसका दोष औरों को नहीं, स्वयं हमें ही है । हमने अपना आचार-विचार खो दिया है, और हमें अपने धर्म की

जानकारी भी नहीं रही है। हम केवल अन्धविश्वासों पर बनी हुई बुरी रीति-रिवाजों और रस्मों में फँसे हुए हैं। परिणाम-स्वरूप हमें हर कोई लताड़ रहा है। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, हम में, कुछ सौ वर्ष पूर्व तक इतनी शक्ति थी कि हम इच्छा मात्र के बल पर प्राकृतिक नियमों में भी परिवर्तन ला सकते थे। हम ने इच्छामात्र से आषाढ मास में भी हिमपात कराया है। किन्तु कितने कष्ट का विषय है कि आज कल हम ऐसे अन्धविश्वासों में फँसे हुए हैं जो सर्वथा हमारे उपहास का कारण बना हुआ है। अपने धर्म से अनभिज्ञ होकर हम अन्य धर्मों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं या उनके द्वारा अपना उद्धार कराने की बातें सोचते हैं। किन्तु निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि सुबह का भूला शाम (सायं) को पुनः घर लौट आए तो उसे भूला नहीं कहा जा सकता। संक्रमण काल में तो हमने अपना अस्तित्व खो दिया था, किन्तु ईश्वरानुग्रह से हमारा अभ्युदयकाल फिर से आरम्भ हो चुका है। हमें आत्मानुशीलन करना चाहिए और दृढ संकल्प से कदम बढाना चाहिये। ईश्वर स्वयं ही हमारा सहायक बनेगा क्योंकि उसने हमसे प्रण किया है —

"कौंतेय प्रतिजानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति।"
तथा – "न हि कल्याण-कृत-कश्चित्-दुर्गतिं तात गच्छति"॥

अतः सही दिशा की ओर अग्रसर होने के लिये हमारा पहला ही सोपान है — अहिंसा व्रत पालन। एकदम दृढ संकल्प होकर इस व्रत का पालन कीजिये, तो

अवश्य सफलता प्राप्त होगी। किन्तु संभव है कुछ व्यक्ति ऐसी दुर्गति को प्राप्त हुए हों कि वे एकदम ऐसा न कर सकें, तो उनको धीरे धीरे आगे बढना चाहिये। दिशा ठीक हो तो लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा जा सकता है। यदि सम्पूर्णरूप से मांस-भक्षण छोडना सब के लिये इस समय सम्भव न हो सके तो धीरे-धीरे उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये उन्हें निम्नलिखित रूप से आचरण करना चाहिये :-

१) अपनी आस्था, विश्वास, अध्ययन एवं सुविधा के अनुरूप नियम पूर्वक प्रतिदिन भजन-कीर्त्तन, पाठ-पूजा या जप-तप करना चाहिये और उसके अन्त में परमेश्वर और अपने इष्ट देव या देवी से सदबुद्धि एवं सद्-व्यवहार की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिये। सुख-सम्पदाओं की नश्वर वस्तुएँ कभी न मांगनी चाहियें, क्योंकि वे तो कर्मानुसार स्वतः ही धर्मात्मा व्यक्ति को प्राप्त होती हैं। अपने सुकर्म से हमें मूल्यहीन कौडी नहीं, मूल्यवान मुक्ताहार खरीदना चाहिये।

२) किसी भी धार्मिक कृत्य में मांस-मछली का कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिये। मांस-भक्षण द्वारा हिंसा का पाप ता लगता ही है, किन्तु धार्मिक कार्य में किसी प्रकार के मांस का प्रयोग करने का विचार करना तो इस से सैंकडों गुणा पाप है। और वास्तव में धार्मिक कृत्य में इसका प्रयोग करना तो लाखों-करोड़ों गुणा पाप है। अतः सब से पहले "शिवरात्रि" के पवित्र त्यौहार पर मांस-भक्षण या बलि-चढा-

वन का दुष्कृत्य समाप्त करना चाहिये । ऐसी बुरी रीतियों में परिवर्तन लाने से किसी प्रकार का कोई अनिष्ट नहीं होगा, अपितु ईश्वरानुग्रह अवश्य होगा । मेरा अपना ही उदाहरण इसके लिये प्रस्तुत है । इसके बाद यह दृढ निश्चय करना चाहिये कि देवी-देवताओं के पर्वों पर किसी भी प्रकार से हिंसा का भागी नहीं बनना चाहिये । याद रखिये इन त्यौहारों में विशेष रूप से ज्वाला चतुर्दशी, मङ्गला-शिवा-शारिका-ज्येष्ठा आदि नाम-धारी देवियों के पर्व आते हैं जिन पर कदापि मांस बलि न चढायें । निश्चय रखिये कि माता कभी भी अपने ही सन्तान बलि से प्रसन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार भैरव पूजन में भी माँस-बलि न चढायें ।

३) विभिन्न पितरों के श्राद्ध-संकल्प के दिनों पर कदापि मांस का प्रयोग न करे, इससे उनको कभी सद्गति नहीं मिलेगी अपितु दुर्गति के भागी वे अवश्य होंगे जिसका दण्ड श्राद्ध करने वाले को अवश्य भोगना पड़ेगा ।

४) सामाजिक त्यौहारों पर मांस का प्रयोग एकदम बन्द करें । इन त्यौहारों में जन्म दिन, यज्ञोपवीत, विवाह, नया-गृह प्रवेश, गृहदेवता का पूजन इत्यादि आते हैं। याद रखिये शुभप्राप्ति के इन त्यौहारों पर मांस प्रयोग करने से इष्ट के बदले अनिष्ट होने की सम्भावना है ।

५) किसी भी मङ्गल कामना की सिद्धि के लिये या किसी इष्ट-बन्धु का रोग निवारण करने के लिये विभिन्न देवी-देवताओं के पूजन में कन्द, मूल, फल, पुष्प, अनाज, जल,

दूध इत्यादि का प्रयोग करें। और उन्हें प्रसाद रूप में 'तहर' क्षीर, हलुआ, पूरियां, खिचड़ी, भात तथा नबात (नाबद) भेंट करें। आप अनुभव करके देखिये पवित्र भावना से और पवित्र वस्तुयें चढाने से मनोकामना सिद्ध होती है। मांस-बलि कदापि न चढायें क्योंकि ऐसा करने से अनिष्ट होने की सम्भावना है ।

६) याद रखिए गायत्री-मन्त्र से अभिषिक्त यज्ञोपवीत-धारी को पतित प्रेतात्माओं को संतुष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं । राजा के लिए यह कदापि उचित नहीं कि वह नौकर-चाकरों की आराधना करे । उसे तो केवल परमेश्वर को संतुष्ट करना चाहिए ।

७) उपरोक्त छः बातों पर अमल करने से आप स्वयं ही इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि मांस-भक्षण करना सब से अधिक जघन्य एवं भयानक पाप है । शास्त्रों में कहा गया है कि शव-दर्शन-मात्र से ही अशौच पड़ता है । इस अपवित्रता से शुद्ध होने के लिए स्नान करना आवश्यक है । कलियुगों में विपरीत परिस्थितियों के कारण पग-पग पर "कसाई" दुकानों पर शव-दर्शन होते रहते हैं । और हर समय स्नान करना सम्भव नहीं हो सकता, अतः शस्त्रकारों ने व्यावहारिक सुविधा के लिए कलियुग में कुछ छूट दी है । कसाई दुकानों पर या अन्यत्र भी किसी भी प्राणी का शव देख कर कम से कम हाथ-मुंह धोकर कुल्ली करना आवश्यक है । और तब तक किसी प्रकार से अन्न-जल नहीं ग्रहण करना चाहिये. क्योंकि पवित्र भोजन भी "अशौच" की अवस्था में अपवित्र

बन कर सारे शरीर और मन-बुद्धि को दूषित करता है। अतः आप स्वयं ही अनुमान लगायें कि इसी शव को अपने "उदर" में स्थान देकर आप अपने जप-तप, क्रिया-कर्म, पाठ-पूजा, तथा अन्य धार्मिक कृत्यों में किस प्रकार सिद्धि प्राप्त करेंगे ? इस लिए हमें मन में यह दृढ संकल्प करना चाहिए और स्वीकार करना चाहिये कि मानव-धर्म का मूल मन्त्र "अहिंसा-पालन" है।

विपरीत परिस्थितियों में पड़कर भी हमें कुदेशों से भागना नहीं चाहिये अपितु मर्दानावार मुकाबला करना चाहिये। और परिस्थितियों को ईश्वरानुग्रह द्वारा अनुकूल बनाना चाहिये। भागना तो कायरता है, परन्तु अगले जन्मों में ऐसी विपरीत परिस्थितियों से बचने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये :—

"मा मे स्त्रीत्वं माच मे दासभावो, मामूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म। मिथ्या दृष्टि मा च में स्यात कदाचन्, जातौ जातौ विष्णु भक्तो भवेयम् ॥

अन्त में हमें परम-पिता परमेश्वर से विनम्र प्रार्थना करनी चाहिये कि वे सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, एवं सर्वोपकारी परमात्मा हमें अपनी सम्पूर्ण अनुकम्पा प्रदान करें और हमें "अहिंसा" एवं अन्य धार्मिक व्रत एवं नियम पालन करने की शक्ति प्रदान करें, ताकि प्रत्येक प्राणी का कल्याण हो सके और हमारी निम्न दैनिक-प्रार्थना स्वीकृत हो जाये :—

सर्वेभवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भागभवेत् ॥ ओं शम् ॥

* परिशिष्ट-१ *

यहां हम लेखक द्वारा, महान – योगी – सन्त स्वामी लक्ष्मण जी महाराज के चरणों में लिखे हुये निवेदन पत्र की, एवं स्वामीजी के मार्गदर्शक आदेश-रूप उत्तर की प्रति-लिपियां प्रकाशित कर रहे हैं ॥

कुलगाम कश्मीर
२४ फ़रवरी १९८२

No:- RHA / 85 Dated 24-2-82

परम पूजनीय, ईश्वर-स्वरूप
आचार्य जी महाराज !

श्रद्धा भक्ति पूर्वक शतशः चरण-वन्दना ॥

सर्वप्रथम मैं उपनी संस्था का परिचय देना चाहूंगा । पिछले वर्ष देहातों में बिखरे हुये हिन्दुओं की एक संस्था का गठन किया गया, जिसका नामकरण "अखिल जम्मू-कश्मीर देहाती हिन्दू संगठन" कुलगाम किया गया । इस संस्था का कार्य-क्षेत्र धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य-क्रमों तक सीमित है । प्रत्येक प्रकार की कार्यशील राजनीति से यह संस्था सर्वथा मुक्त है । इस संस्था के सम्मेलनों में धर्म चर्चा का आयोजन भी होता है । और बिखरे हुये अनपढ या अर्ध-पठित हिन्दू समाज को हिन्दू-धर्म का वास्तविक ज्ञान प्रदान

किया जाता है। यदि किसी उचित समय पर आप यहां आकर हमें शुभाशीर्वाद प्रदान करने का अनुग्रह करेंगे, तो हम इसे अपना अहोभाग्य समझेंगे।

पिछले दिनों एक मामूली सी घटना हुई जो इस पत्र-लेखन का कारण बन गई। एक पंजाबी सज्जन ने, जो आजकल यहीं निवास करते हैं, मांस-भक्षण करने वाले कश्मीरी पण्ड़ित ब्राह्मणों को "ब्रह्म-राक्षस" की संज्ञा दी। यह बात सुनकर मेरे मन में उथल-पुथल सी मच गई। इधर महाशिवरात्रि के आगमन पर रेड़ियां द्वारा बार बार प्रसारण किया गया कि इस पवित्र त्योहार के उपलक्ष्य में मछली इत्यादि का पूर्ण प्रबन्ध किया गया है। परिणाम स्वरूप अन्य धर्मावलम्बी भाई-बहन भी यही समझ बैठे हैं कि हिन्दू-धर्म और मांस-मछली का चूली-दामन का सम्बन्ध है। प्रो० काशीनाथ जी दर ने परसों एक रेडियो वार्ता में अष्ट-भैरवों के प्रादुर्भाव पर प्रकाश ड़ालते हुये मांस के भक्षण एवं बलिका भी वर्णन किया। संयोग से मैं आजकल ड़ा० बलजी नाथ जी पण्ड़ित द्वारा लिखित पुस्तक "Aspects of Kashmir Shaivism" को पढ रहा हूँ। इसमें विद्वान लेखक ने शैव-शाक्तों द्वारा न केवल मत्स्य-मांस का ही अपितु पंचमकारों के प्रयोग करने का वर्णन किया है। इस पुस्तक का "Foreword" आप महानुभाव ने स्वयं लिखा है। अतः समझा जा सकता है कि पुस्तक में वर्णित दार्शनिक मत से आप भी सहमत हैं। अतः कुछ प्रश्न उठते हैं जिनका आप जैसे निष्काम कर्मठ शैवाचार्य से बड़कर कोई अन्य

उत्तर देने में समर्थ नहीं है । यदि इन प्रश्नों का उत्तर देने का आप महानुभाव कष्ट करेंगे तो हमारी बहुत सी उलझनें स्वतः ही सुलझ जायेंगी । "परोपकाराय सतां विभूतयः" की उक्ति को ध्यान में रखते हुए मुझे पूर्ण आशा है कि मुझ अल्पज्ञ का आप जैसे आचार्य-मार्तण्ड को पत्र भेजने की धृष्टता को क्षमा करके, आप हमारी शङ्का का समाधान करने का अनुग्रह करेंगे ।

प्रश्न इस प्रकार हैं :—

i) हिन्दू-धर्म में मांस-भक्षण एवं प्राणि-बलिदान प्रमाणित है अथवा वर्जित ?

ii) यदि वर्जित है तो बहुत से सारस्वत ब्राह्मण नामधारी कश्मीरी पण्डित विशेषकर शैव-शाक्त मतावलम्बी मांस का भक्षण एवं बलि-चढावन क्यों करते हैं ?

iii) यदि प्रमाणित है ता उसका शास्त्र-प्रमाण क्या है ? माता दुर्गा की जब हम "या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता...... ..." इत्यादि श्लोकों द्वारा पूजा-वन्दना करते हैं, तो वह सब प्राणियों की माता किस प्रकार अपने ही संतानों की बलि स्वीकार करती है ?

iv) भैरव रूप में स्वयं प्रकट होने वाले शङ्कर के पूजन में मांस-बलि का शास्त्र-विधान क्या है ? क्या ऐसा करने से "शङ्कर" शब्द की व्युत्पत्ति का तालमेल बैठता है ?

v) शास्त्रों में हमने पढा है कि प्रत्येक भारतीय दर्शन ने "यम-नियम" पालन को अत्यावश्यक माना है । क्या

शैव-शाक्त दर्शनों में भी "यम-नियम" पालन आवश्यक है ? इनमें सर्व प्रथम स्थान "अहिंसा" को दिया गया है । अतः मांसभक्षण या बलि-चढावन तथा यम-नियम पालन करने में कोई विरोध तो नहीं उपस्थित होता ?

vi) यदि मांस बलि-चढावन एवं भक्षण शास्त्र-सम्मत है तो केवल मत्स्य तथा भेड़-बकरियों के मांस तक ही यह क्यों सीमित है ? अन्य प्राणियों के बलिदान एवं मांस-भक्षण में क्या व्यवधान है ? इत्यादि

आचार्य प्रवर जी ! ऊपर लिखित प्रश्नों का समाधान करने में इस समय आप जैसे महानुभाव के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति हमारो दृष्टि में नहीं है । यह हमारा अहोभाग्य है कि आपका शुभाशीर्वाद जीवित रूप में इस समय सारे संसार के साथ-साथ कश्मीर-मण्ड़ल को विशेष-रूप से उपलब्ध है । अतः मुझे पूर्ण आशा है कि आप महानुभाव मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अकिंचन की धृष्टता को क्षमादान से अनुग्रहीत करेंगे तथा ऊपर वर्णित शङ्काओं का स्पष्ट-शब्दों में समाधान करके भव-बन्धन में पडे हुये हम जैसे पापियों का उद्धार करेंगे । एवं आने वाली पीडियों का भी मार्ग-दर्शन करने का अनुग्रह करेंगे ।

आजकल हिन्दु-धर्म एक कठिन दौर से गुजर रहा है। अन्य-धर्मानुयायी अपने में निगलने का अन्तर्राष्ट्रिय षड़यन्त्र-रच रहे हैं । वे लोग हमारी निर्धनता के साथ-साथ हमारी अल्पज्ञता एवं अंध-विश्वासों का भी भर पूर लाभ उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं । वाद-विवादों में धर्म-प्राण हिन्दू

जनता अपने अज्ञान अथवा अल्पज्ञान के कारण कभी-कभी असफल भी हो जाती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने विश्वासों पर पूर्ण आस्था होनी चाहिये। और शुद्ध ज्ञानरूपी कवच द्वारा अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिये। इसी बात को दृष्टि में रखकर हमने आप जैसे जागृत एवं महान-आत्मा से शुद्ध ज्ञानदान की याचना की है और आशा है कि आप हमें निराश नहीं करेंगे। ...॥ ॐ शम्॥

अत्यन्त विनम्रता एवं
श्रद्धापूर्वक आपके चरण
कमलों का दर्शनार्थी
"त्रिलोकी नाथ पण्ड़ित"

महामन्त्री
देहाती हिन्दू-संगठन,
कुलगाम कश्मीर।

ॐ

ईश्वर आश्रम
23-3-82

प्रिय त्रिलोकी नाथ जी,

आपका प्रिय पत्र मिला था, पर मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण पत्र न भेज सका। अब प्रभु की दया से ठीक हुआ हूँ। आपने जो मांस-भक्षण के विषय में लिखा था उसके संबन्ध में मैं क्या लिख सकता हूँ। हमारे शैव-शास्त्रों में भी लिखा है :—

न विवाहे पशुं हन्यान्न चात्मार्थे कदाचन ।
याग कालेऽपि न हन्यान्नेष्टबन्धु समागमे ॥

मांस-भक्षरण की प्रथा कहां से आई है — यह मुझे समझ में नहीं आता । यह हमारी अनभिज्ञता है कि हमारे भाई इस घोर पाप के भागी बन रहे हैं । मैं मांस-भक्षरण की अनुमति नहीं दे सकता हूं । पता नहीं आजकल के महान् पण्डितों को भी यह समझ क्यों नहीं आता कि हम क्या करते हैं ।

याज्ञवल्क्य-स्मृति में भी इस प्राणिहिंसा के तीन पाप (crime) बताए हैं । वह यह हैं :—

१) प्राण-हरण, २) पीड़ा और ३) वीर्यक्षेप ॥

प्राण-हरण

जब हम किसी प्राणी का गला काटते हैं तो उस के प्राण उस शरीर से अलग होते हैं, इसका दण्ड उसे मिलता है कि अनेक जन्मों में उसकी संपूर्ण आयु नहीं बनती । कभी गर्भ में ही मर जाता है, कभी बचपन में ही और कभी युवावस्था ही में उसकी आयु समाप्त होती है । भाव यह है कि पूर्ण-आयु उसे किसी जन्म में प्राप्त नहीं होती ।

* पीडा *

जब हम प्राणी का वध करते हैं तो उसे जो पीडा

अनुभव में आती है उसका अनुमान हम नहीं कर सकते हैं। इसके फल-स्वरूप पशु-घातक को या मांसाहारी को दूसरा दण्ड मिलता है। उसे अनेक जन्मों में कभी पिता, कभी माता, कभी पुत्र और कभी अन्य लोग पीडा ही पहुँचाते हैं। वह किसी जन्म में सुख-मय आयु प्राप्त नहीं करता। उसे सबों की ओर से केवल कष्ट ही प्राप्त होता है।

* वीर्याक्षेप *

जब पशु की हिंसा होती है तब उससे हम उसका पराक्रम अपने वश में लाते हैं, अर्थात् उसको लिटाकर उसके हाथ पांव दबाकर पकडते हैं और उसे हिलने नहीं देते। फिर उसका गला काटते हैं। इसके फलस्वरूप मांसाहारी को यह तीसरा दण्ड मिलता है कि अनेक जन्मों में उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होता, वह सारे जन्मों में निर्वीर्य बनता है और अनेक विटामिन खाकर भी उसकी कमज़ोरी नहीं हटती।

इत्यतः मैं हाथ उठाकर कहूँगा कि मांस-भक्षण सर्वथा निषिद्ध है और यह मांस-भक्षण की प्रथा समूल नष्ट होनी चाहिये ॥ ॐ ॥

आपका सुहृत
लक्ष्मणजू
ईश्वर आश्रम

* परिशिष्ट–२ *

यहां पर हम उस परिपत्र की प्रतिलिपि प्रकाशित करते हैं जो लेखक ने अपनी संस्था की ओर से कश्मीर के उन विद्वानों धर्म गुरुओं पण्डितों, आचार्यों एवं बहुत से धर्म संस्थानों के अध्यक्षों को भेजी ।

अखिल जम्मू–कश्मीर देहाती हिन्दू संगठन कुलगाम, कश्मीर

सेवा में

श्रीमान् ____________________

____

____

क्रमाङ्कः- RHA/94-140 दिनाङ्कः- 27-4-82

माननीय महोदय,

सादर नमस्कार । सब से पहले मैं अपनी संस्था का परिचय देना चाहूंगा । पिछले वर्ष कुछ स्वयंसेवी सज्जनों ने विभिन्न देहातों में बिखरे हुए हिन्दुओं की विभिन्न समस्यायें हल करने के लिए उन्हें एक संगठन के दायरे में लाने का प्रयास किया । फलतः एक संस्था का गठन हुआ जिसका नाम "All J & K Rural Hindu Association (Non-Political) Kulgam" रखा गया और कुलगाम में ही इसका

केन्द्रीय कार्यालय रखा गया । स्वीकृत संविधान के अनुसार कार्य - समिति का चयन हुआ और इसकी मासिक बैठकें हुआ करती हैं । यह संस्था कार्यशील राजनीति से सर्वथा मुक्त है । इसका क्षेत्र सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रमों तक ही सीमित है । देहातों में बिखरे हुए हिन्दुओं की दशा नगर वासियों से सर्वथा भिन्न है। उन्हें कदाचित ही सामूहिक रूप से सामाजिक त्यौहारों में सम्मिलित होने का अवसर मिलता है। धर्म प्रचार का कार्य न होने के समान है । अधिकतर नर-नारी वास्तविक शिक्षा से भी अनभिज्ञ हैं । अतः इन सब कमियों को पूरा करने के लिये और त्रुटियों को दूर करने के लिये हमारी संस्था ने कार्य भार सम्भाला है । इसी संदर्भ में हमारे कार्य-कर्त्ता यदा-कदा सत्सङ्गों का आयोजन करते हैं जिन में कुच्छ समस्यायें और शङ्कायें उभरती हैं । कुछ का समाधान हम स्वयं करते हैं और कुछ का आपजैसे प्रबुद्ध विद्वानों एव धार्मिक नेताओं के सामने लाने का प्रयास किया जाता है ।

पिछले फाल्गुण मास की बैठक में एक धार्मिक मसला उठ खड़ा हुआ । एक पंजाबी महानुभाव ने मांस - भक्षण करने वाले ब्राह्मणों को "ब्रह्म-राक्षस" की संज्ञा दी । इधर रेडियो प्रसारणों द्वारा बार बार कहा गया कि शिवरात्रि के पवित्र त्यौहार पर मांस-मच्छली का पूर्ण प्रबन्ध किया गया है । साधारण जनता हिन्दूधर्म तथा अन्य धर्मों में फरक (फर्क) करने में असमर्थ हो रही है। क्योंकि हमारे पुरोहित तथा धार्मिक-वृद्ध-जन बड़ी श्रद्धाके साथ भगवान-भगवती को

मांस-बलि चढाते हैं। मांसिक एवं निरामिश बलि अर्पण करते समय एक ही प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण भी किया जाता है। विधर्मियों के अन्तर्राष्ट्रीय षड्‌यन्त्र के सामने हमारी अल्पज्ञ जनता कुछ असमर्थता अनुभव करती है। अतः कुछ प्रश्न उठते हैं, जिनका हम आप महानुभाव से स्पष्ट एवं सरल शब्दों में उत्तर प्राप्त करने की सविनय प्रार्थना करते हैं। आशा है कि आप हमें निराश नहीं करेंगे।

प्रश्न इस प्रकार हैं:—

i) हिन्दूधर्म में मांस-भक्षण एवं बलि-चढावन प्रमाणित है अथवा वर्जित ?

ii) यदि प्रमाणित है तो इसका शास्त्र प्रमाण क्या है ? और ऐसा करना किस हिन्दू-दर्शन के अनुरूप है ?

iii) भगवान अथवा भगवती जो सब प्राणियों के पिता-माता के रूप में विद्यमान माने जाते हैं, किस प्रकार अपने ही संतानों की बलि स्वीकार करते हैं ?

iv) हमने सुना है कि षडदर्शन के अतिरिक्त जैन बौद्ध एवं शैव-शाक्त दर्शन भी यम-नियम पालन करने को स्वीकार करते हैं। यदि ऐसा है तो मांस-भक्षण एवं बलि चढावन से कहीं इसका उलङ्घन तो नहीं होता ?

v) यदि मांस-भक्षण एवं प्राणि बल्यार्पण किसी भी प्रकार शास्त्र-सम्मत है तो यह कार्य मच्छलियों एवं भेड़-बकरियों तक ही क्यों सीमित है। अन्य प्राणियों जैसे मुर्गे, सुअर, घोडे, कुत्ते, बिल्ले अथवा मनुष्य के भी मांस-

भक्षण एवं बलि चढावन में कौन सा शास्त्र व्यवधान है ?

vi) यदि यह सर्वथा वर्जित है तो बहुत से हिन्दू, विशेषकर कश्मीरी पण्डित सारस्वत ब्राह्मण ऐसा क्यों करते हैं ? और आप जैसे महानुभाव इस दुराचार को दूर करने का क्या प्रसास करते हैं ?

vii) संक्षेप में हिन्दूधर्म एवं अन्य धर्मों में क्या भेद है ?

माननीय महोदय ! देहातों में रहने वाले हम जैसे अल्पज्ञ जन इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देने में असमर्थता अनुभव करते हैं । अतः विनम्र भावना से केवल जिज्ञासार्थ, शुद्ध ज्ञानार्जन के लिए आप महानुभाव से स्पष्ट शब्दों में इन शंकाओं का समाधान जानने की अपेक्षा करते हैं। और आशा रखते हैं कि आप हमारा एवं आगामी पीडियों का मार्गदर्शन करने का स्तुत्य कर्त्तव्य निभाएँगे ।

भवदीय अभिन्न

त्रिलोकी नाथ पण्डित

महामन्त्री

उक्त परिपत्र के केवल थोडे ही महानुभावों के उत्तर हमें प्राप्त हुए हैं । हम सच्चे हृदय से उन सबका आभार प्रदर्शित करते हैं, चाहे उनके मत से सहमत हों या असहमत । कम से कम उन्होंने अपना कर्त्तव्य तो निभाया और हमें अधिक सोचने की प्रेरणा दी । अधिकतर महानुभावों ने आज तक भी उत्तर देने का कष्ट नहीं किया है । हमारी अल्पज्ञ बुद्धि में, इसके, तीन कारण हो सकते हैं :-

i) या तो वे महानुभाव सांसारिक लाभों में इतने उलझे हुए हैं कि उन्हें निःस्वार्थ भाव से काम करने का विचार भी नहीं आता ।

ii) या तो वे अपनी विद्वता एवं पण्डिताई की ऐसी चरम-सीमा पर पहुँच चुके हैं कि हम जैसे तुच्छ व्यक्तियों के पत्रों के उत्तर देने से उनके "अहम्" को ठेस पहुँचती हो ।

iii) या तो उनकी निजी आस्था और विश्वास संदेहास्पद एवं कच्चे हैं और उनका मात्र पुस्तकीय ज्ञान कुछ कटुसत्यों का सामना करने में संकोच अनुभव करता है ।

कारण कुछ भी हो, हमें हर प्रकार से उनसे सहानुभूति है और हम यथापूर्व उनका आदर करते हैं ! यदि कुछ और महानुभावों के उत्तर अब भी प्राप्त हो जाएँ या यह पुस्तक देखकर किसी सज्जन को अपना मत लिखने की इच्छा हो जाए तो हम उनको भी आगामी संस्करणों में स्थान देने का प्रयत्न करेंगे ।

अब हम प्राप्त हुये कुछ उत्तर प्रकाशित करते हैं :–

१) लोलानिवास, गणपतयार, श्रीनगर, कश्मीर से परमादरनीय पण्ड़ित मोती लाल जी "पुष्कर" लिखते हैं :-

आदरनीय धर्मप्राण जाति-हितैषी
श्रीमान् पण्डित त्रिलोकी नाथ जी
महामन्त्री

अखिल जम्मू-कश्मीर देहाती हिन्दू
संगठन, कुलगाम कश्मीर ।

बन्धुवर,

आपका पत्र क्रमाङ्क RHA/94-120 दिनाङ्क 27-4-82 प्राप्त हुआ । एतदर्थ धन्यवाद स्वीकार कीजिये । ....
... आपकी संस्थाका परिचय मिला, बड़ी प्रसन्नता हुई । आपके कार्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता हूँ । आपका परिचय, आपकी संस्थाका परिचय मुझे प्रत्यक्षदर्शी के नाते है ही । आपने तथा आपके अन्य मित्रों ने जो कार्य हाथ में लिया है वह महान है ।

यह बात मुझे अधिक संतोष प्रदान करती है कि आपकी गतिविधियां शुद्ध राजनीति से परे रह कर चल रही हैं । भगवान आपको आगे बढने की शक्ति प्रदान करे ।

आपने कुछ प्रश्न उभारे हैं जिनका समाधान ढूंढना अपेक्षित है :—

i) हिन्दूधर्म में मांस-भक्षण वर्जित है ।
ii) जैन, बौद्ध, शैव आदि जितने भी भारतीय धर्म हैं, वे सब के सब, हिन्दू धर्म के ही अङ्ग-उपाङ्ग हैं । उन्हों ने भी "अहिंसा परमो धर्मः" को स्वीकार किया है ।
iii) वर्जित होकर भी कश्मीरी पण्डित क्यों ऐसा करते हैं, इस पर मैं भी आपकी तरह शोध कर रहा हूं । मुझे कई महानुभावों से इस विषय पर स्वयं भी विचार-विमर्श करने का मौका मिला हैं । उनकी बातें अभी

तक मुझे अहिंसा का मन्तव्य बदलकर उनकी सम्मति अपनाने पर तैयार नहीं कर सकी है ।

मैं अपने अन्तःकरण का अनुभव लिखना चाहता हूँ कि अहिंसक रहकर मुझे अपना आप प्रभु के निकट दिखाई देता है । और मांस-भक्षण के समय पापकृत्य का भागी मैं अपने आप को अनुभव करता हूँ ।

मुझे मन में बड़ी लालसा है कि हम सारस्वत कहलाने वाले पण्ड़ित महानुभाव अपने सनातन, शाश्वत वैदिक धर्म की रक्षा के लिए अहिंसा का व्रत अपनाएँ नहीं तो धर्म हाथ से जा रहा है ।

हमें प्रभु की अनुकम्पा प्राप्त करनी है तो अहिंसक होना ही पडेगा ।

मुझे पूरी आशा है कि आप अपने कार्य में आगे बढते जाएँगे और अहिंसक-आन्दोलन को तेज़ करेंगे । मेरी सारी सेवाएँ इस कार्य के लिए समर्पित हैं ।

आपका अपना
पं० मोती लाल 'पुष्कर'

शैव-शास्त्र के विख्यात विद्वान ड़ा० बलजी नाथ पण्डित लिखते हैं :—

145-A गांधी नगर जम्मू
11-6-1982

प्रिय मन्त्री जी,

आपका 27-4-1982 का पत्र कुछ दिन पहले यहां आया। मैं दो सप्ताह पूर्व तीन दिन कुलगाम में ठहरा। आप मिले नहीं। ७-६ को जब मैं यहां लौट आया तो पत्र मिला। आपकी शङ्काओंका पूरा समाधान करना हो तो या एक पुस्तिका बन जाएगी, अथवा एक वृहत् लेख। मैं संक्षेप से निम्न बातें लिख रहा हूँ :—

१) मांस-भक्षण और मांस-बलि दोनों ही शर्तों और नियमों की परिधि के भीतर हिन्दूधर्म में प्रमाणित हैं।

२) शास्त्र प्रमाण आपको वैदिक, तांत्रिक और स्मार्त वाङ्मय के भीतर पचुर मात्रा में मल सकते हैं।

३) जैसे इस संसार के प्रशासन के भिन्न-भिन्न ढांचों में सभी प्रकार के ऊँचे और नीचे अधिकारी होते हैं। वैसे ही इस त्रिलोकी के दिव्य प्रशासन के ढांचे में इसके विविध स्तरों पर विविध अधिकारों को निभाने वाले देवगण होते हैं। उन में जो-जो अधिकारी देवता मांसप्रिय हैं उस-उस देवता को मांस-बलि देकर ही हम सन्तुष्ट कर मकते हैं। ऐसा करना आसान होता है। सन्तुष्ट होकर ही वह हमारे प्रयोजनों को सिद्ध करता है। अन्यथा उपासना निष्फल हो जाती है। उन्हें सन्तुष्ट करनेके अन्य उपाय अतीव कठिन हैं, और सब के लिए सम्भव नहीं।

४) दर्शनों के सिद्धान्तों की बातें बहुत गहरी हैं। उन्हें एक पत्र के भीतर कैसे लिखा जाए। हां ! इतनी बात आप ध्यान में रखें कि जिस पशु के मांसकी बलि विधिपूर्वक किसी देवता को दी जाती है उस पशुकी आत्माका त्वरित उत्थान होता है। वह अनेकों योनियों के क्रम को लांघकर मनुष्य योनि से भी ऊपर चला जाता है। इस तरह से उसके विधि पूर्वक बलिदान से उसकी आत्माका बहुत उपकार होता है।

५) क) परिपूर्ण परमेश्वर और पराशक्ति ही जगत के माता-पिता हैं। सांसारिक दिव्य प्रशासन को चलाने के लिए वे दोनों अनेकों स्तरों पर उतरकर अनेकों देवगणों और देवियों के रूपों में प्रकट होकर त्रिलोकी में उस दिव्य प्रशासन को चलाते हैं जिसके अनुसार सृष्टि, स्थिति, संहार होते हैं। और बन्धन की तथा मुक्ति की लीलायें चलती हैं। उन देवगणों की और उन देवियों की अपनी - अपनी रुचि होती है। जिसके अनुसार उन्हें स्वोचित बलि चढाकर ही सन्तुष्ट करके मानव उनके द्वारा अपने कार्य करवाते हैं।

ख) कई देव और देवियां ऐसे भी हैं जो कभी हमारे जैसे मानव थे और अध्यात्मिक उन्नति करते करते देवताओं के अधिकारों को पा गए। इन्द्र कभी मानव था। भैरव कभी मानव थे। देवपद पर पहुंचने पर भी वे प्रायः अपनी प्राक्तन रुचिका परित्याग करना आवश्यक नहीं समझते। अतः उनकी रुचिके अनुसार उन्हें भेंट चढाई जाती है।

ग) मानव अपने इष्टदेव को प्राय: वही-वही पदार्थ बलि के रूप में देता है जिस पदार्थ को वह अपने लिए अच्छा समझता हो । कुत्ते, बिल्ले आदि पंच नख प्राणी हमारे लिए अभक्ष्य हैं । उसी तरह से ग्राम्य कुक्कुर और ग्राम्य सुअर हमारे लिए अभक्ष्य हैं । उस अभक्ष्य प्राणी को हम अपने देवता को खाने को कैसे देवें । इसी लिए हम प्याज लहसुन आदि सब्ज़ियों को भी देवताओं को नहीं चढाते ।

६) धर्म शास्त्रों का अध्ययन किए बिना ही लोग सनातन धर्म के रस्मों पर आक्षेप करते रहते हैं । यह एक फैशन बन गया है । यदि हमें धर्म के सूक्ष्म तत्त्वों को जानना हो तो हमें कम से कम मनुस्मृति के कुछेक प्रकरणों को पढना चाहिए । वैसा किये बिना ही हिन्दू-धर्म पर आक्षेप करना एक अनधिकार चेष्टा है ।

७) अन्य सभी धर्म किसी एक एक व्यक्ति के मत हैं । एक मात्र सनातन हिन्दु-धर्म ही धर्म है । यह एक विज्ञान है जिसमें हिन्दुओं के सभी मत-मतान्तरों तथा अन्य सभी धर्मों को अपना अपना समुचित स्थान मिल सकता है । सनातन धर्म एक ऐसा सुविशाल विज्ञान है जिसकी खोज सहस्रों वर्षों से ऋषिगण करते आये हैं और नये नये धर्म तत्त्वों को discover करते आये हैं । वह वैज्ञानिक खोज अब भी चल रही है और आगे भी चलते ही रहेगी । एक मात्र सनातन धर्म ही वैज्ञानिक संसार का धर्म बन सकता है । जब संसार के सभी देश विज्ञान में पर्याप्त प्रगति करेंगे

तो अपने अपने मतो के संकुचित विचारों के प्रति उनकी आस्था टूट जाएगी । और सनातन धर्म के किसी एक मार्ग को अपनी मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुसार अपनाएँगे । वह युग कब आएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता ।

भवदीय

बलजिन्नाथ:

शुपयान से एक धर्मप्राण श्री शम्भु नाथ जी लाहोरी ने संस्कृत मिश्रित आङ्गल भाषा में इस प्रकार हमारा मार्ग दर्शन किया है :—

S. N. Lahori
M. A. (Psychology) L. L. B
Dip. Russian & German
Advocate

Shopian
Kashmir
Dated: June 1, 82

My dear Pandit Sahib,

Received your circular letter No RHA/94-140 Dated 27-4-82 by hand on 31st May 82. This brief reply is offered :-

"The Panjabi gentleman" has rightly termed a meat-eating & so called Brahmin as ब्रह्मराक्षस। The spirit of सनातन धर्म: advocates non-violence as a basic principle. आचार: परमो धर्म: अहिंसा

परमो धर्मः। पतञ्जलि lays down अहिंसा as one of the यमः in his अष्टाङ्गयोगः। The concept of बलि is आसुरीय in nature. It is तान्त्रिक and is inserted and introduced in some ग्रन्थाs under non-Brahmanic influence to sanctify हिंसा for a क्षत्रिय, but never for a Brahmin. our so called पुरोहिताs are निरक्षर, निर्लज्ज & अनभिज्ञ like us all. They insist on the use of Mutton in certain rituals to taste राक्षसोय meals at यजमान's house free of cost repeated by. To follow सनातन धर्मः needs dantless courage. It is through अहिंसा, यज्ञ, दान, तपः, जपः and साधना that one can obtain liberation मोक्ष or better life hereafter. धर्मः has not & can not advocate मांसभक्षण। Most Kashmiri Pandits are incorrigible in this respect. They can not be persuaded to abondone "tasty" mutton-eating. Repeated attempts to do so have invariably led to disgust.

Asuming there is over-whelming evedence against meat-eating, can you, then, persuade KPS to abondone meat-eating ? The answer is 'no' obviously. What then is the fun of raising such questions. Kashmiri Pandits are doomed, being incorrigible. They won't accept any body

as leader. Is it not ? Leaders are also lacking.

Kashmiri Pandits are facing a social problem and not the religious problem. It is a question of being able to live as a coherent, compact community without any compulsion to do the contrary. It in not the problem of : to eat or not to eat mutton ....

Very Sincerely yours
S. N, Lahori

श्री विद्याधर शैवाश्रम से उत्तर रूप में हम पर इस प्रकार अनुग्रह किया गया है। लेखक महानुभाव निष्काम कर्म में इतने तन्मय हो चुके हैं कि पत्र के आदि या अन्त में कहीं भी अपना नाम तक नहीं लिखा है। हम इनकी इस भावना को शतशः प्रणाम करते हैं :-

श्री विद्याधर शैवाश्रम
करण नगर, श्रीनगर
दिनाङ्क 7 जून 1982

श्रीमान् जी,

सादर नमस्कार। हम ने जो कुछ थोडा सा शैव शास्त्रों का अध्ययन किया है, उन में हमने कहीं भी मांसादिक बलि देने अथवा इसके भोग चढाने या खाने का निरूपण

नहीं पाया है । किन्तु देहन्तारूपी मांसके त्याग के विषय पर प्रत्येक ग्रन्थ में संकेत किया गया है । शरीर जिसके साथ हमें इतना सारा मोह है, अस्थाई और विकारशील है। परन्तु सत् चितानन्द भैरव रूपी भगवान सृष्टि, स्थिति और संहार कारक परम शिव ही अतिसूक्ष्म, सनातन, चितांशरूप से कीटादि से लेकर जीवों, पशुओं, पक्षियों, मनष्यों और देवताओं के शरीरों में प्रवाह करता है और इस प्रकार विश्वरूप सारी सृष्टि में वही चिदात्मा विराजमान है। भला जो सर्वरूप परमात्मा प्रत्येक योनि में प्रकाशमान है वह मांसादिक भोगों का आहार करने के योग्य कैसे हो सकता है ?

यदि किसी शास्त्र में ऐसा लिखा भी हो, सो तो स्वार्थ कामनाओं के निमित्त अर्थात् सकाम कामनाओं के प्रयोजन हेतु ही लिखा होगा । पारमार्थिक कामना अर्थात् स्वस्वभाव रूप स्वात्मा की प्राप्ति के लिये ऐसे उपाय कैसे सिद्ध होंगे ? अब आपका प्रश्न होगा कि फिर ऐसा क्यों होता है ? इसके उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि अज्ञान के कारण, अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाने के कारण ही ऐसे अधर्म आचार प्रकट हुए हैं । यह तो बहिर्मुक्त की पराकाष्टा है कि हम अपने सनातन और प्राची नियमों अर्थात् संध्या, पूजा और अर्चना इत्यादि कर्मों को भूलकर कपड़ों को प्रेस करने, जूतों की पालिश करने और बाहरी सजधज में लगे रहे हैं।

एक और कारण इस अधर्माचरण का यह भी हो सकता है कि हमारे युवक पढ - लिख कर विदेशों (अमेरिका, योरुप, जापान अथवा मुस्लिम देशों) में नौकरियों के लिए जाते

हैं। जब वे लौट आते हैं तो उन देशों के आचरण से वे अवश्य प्रभावग्रस्त होते हैं।

मुझे अपने बाल्यावस्था की एक बात याद आती है। कि जब मैं १०, ११ वर्ष की आयु का था, एक सन्यासी महात्मा चम्पानाथ स्वामी भारत से कश्मीर आये थे। यहां के ब्राह्मण और पण्ड़ित जनों को मांसादिक प्रयोग करते देखकर उनका मन बहुत दु:खी हुआ। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों पर व्याख्यान दिए। जिस के फलस्वरूप बहुत लोगों ने मांस का प्रयोग करना त्याग दिया। और हमारी जनता ने अपने लडके और लड़कियों की शादियों में मांसादि का प्रयोग भी बन्द किया। परन्तु अब यह बुरा रस्म फिर से आरम्भ हुआ है और हम अब फिर से विवाहों के शुभ उत्सवों में मांस (जैसे अशुभ पदार्थों) का प्रयोग करने लगे हैं।

आपको मन में परोपकार की अपेक्षा उत्पन्न हुई है, यह प्रशंसा के योग्य है। हम सब आश्रम के भ्राता आप-को धन्यवाद देते हैं। हमारा आशीर्वाद है कि आप इस शुभ कार्य में सफल रहें।

श्री स्वामी मोती लाल जी ब्रह्मचारी ने हमारे परिपत्र से प्रेरित होकर कुछ समय पूर्व एक लम्बा लेख "मार्तण्ड़" में "वटुक-भैरव" के विषय पर छपवाया है। उन्होंने, कृपा करके, उस में से कुछ उद्धरण लेने की अनुमति दी है, जो इस प्रकार है :–

"............ One of these festival performances Maha Shivratri is grandly celebrated every where. In Kashmir the occasion is performed as "Bhairav yogni yaagha" known as "Watuk Bhairav Puja", prescribed by Tantric tradition, which does not essentially differ from that of vedic rituals...... We are continuing this tradition of our fore-fathers. But one should not misuse it that the festival is for enjoying all prohibited things in Shastras. We must realize its essence and applications first, as is said in Tantra —

नाम मात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरताः नराः ।
मन्त्रोच्चारणहोमाद्यै र्भ्रामिता क्रतुविस्तरैः ॥

.........Both Karma and yoga bring fulfilment in this life. Karma yoga is superior to renounciation

कर्म योगो विशिष्यते ।...people have forgotten essence of both in the course of time. Opportunists have mis-interpreted that, especially in our way of puja.............those who cook meat for themsel-ves, their whole dynasty is loaded with sin—

स्वात्मार्थं पाचितं मांसं दहति सप्तमं कुलम् ।

So it has become the fashion to fill the stomach of wishful persons and to exploite the tradi-

tion for selfish-motives on the name of 'Lord Shiva", which will lead one to destruction— Manu, the law giver, has stopped sacrifice etc. in Kaliyuga

"अश्वालंबं ग्वालंबं सन्यासं पलपैत्रिकं ,
देवरात् च सुतोत्पत्ति, कलौ पंच विवर्जयेत् " ।।

In the ancient tradition of Tantras there are no hard and fast rules, as in the case of others. But as ill-luck would have it, a beginer in Tantric system often, not always, associates with low-spirits and makes them minister for his unlawful ends. He discards the achievements of high ideal of Tantras, and their fate is rendered miserable both here and hereafter. Practices of this type are never praised on the part of real Tantras"

'प्रातः काल की प्रार्थना-चर्या में गायत्री–जप अवश्य रखें । गायत्री जप ही मानव-कल्याण है "

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।।
यो० द० २, ३०

जातिदेश काल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ।।
यो० द० २, ३१

परिशिष्ट-३

कश्मीर के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी, विद्वान एवं कर्मकाण्डी स्व० केशव भट्ट जिनके विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने इसी कश्मीर मण्डल में "नुनर" ग्राम में जहां वे पाठशाला अध्यापक के रूप में काम करते थे, देह त्याग के बाद पुनर्जन्म लिया था। और ढाई घण्टे जीवित रहकर फिर स्वर्ग सिधारे। उनके इस पुनर्जन्म की भविष्य वाणी उस समय के मनिगाम निवासी प्रसिद्ध "सिद्ध" "श्री कशकाक मला जी" ने की थी। उन्ही ऋषिरूप विद्वान स्व० केशवभट्ट के मत के विषय में, उनके ही सुपौत्र .... कृष्णा प्रेस श्रीनगर के वर्तमान संचालक इस प्रकार लिखते हैं :-

श्री केशवभट्ट जी ने कश्मीर कर्म काण्ड की पुस्तकें विस्तार पूर्वक छाप कर प्रकाशित करके कश्मीरी पण्डितों का विशेष रूप से उपकार किया है। कर्म - काण्ड जो प्रायः लुप्त होने जा रहा था उनके ही अनथक परिश्रम के कारण सुरक्षित तथा प्रचार में रहा। यद्यपि मांस भक्षण के विषय में उन्हों ने लिखित रूप से कुछ नहीं रखा है परन्तु कई सज्जन उनके पास एसी शंकाओं का समाधान करने अकसर आया करते थे और वह बडे ही सरल स्वभाव से उनकी शकांओं का समाधान करते थे। वह अकसर कहा करते थे "परम-पिता परमेश्वर ने तो मनुष्यों को बुद्धि देकर शेष पशुओं से उच्चतर बनाया है। मनुष्यों को अपनी बुद्धि से हर कार्य करते समय सोचना चाहिए कि वह जो कुछ करना चहता है वह उचित है अथवा अनुचित्। यदि उस का मन उस कार्य को उचित समझता है तो करे यदि अनुचित मानता है तो कदापि न करे। चूंकि हर कार्य का परिणाम होता है अतः

कार्य करने से पूर्व उसके परिणाम का ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि कार्य से परिणाम श्रेयस्कर है । आवेश में अथवा लोभ वा मोह के कारण मनुष्य कुच्छ भी करने को तैय्यार होजाता है परन्तु यदि वह परिणाम को भी सामने रखेगा तो वह हर समय उचित कार्य का ही चयन करेगा । कार्यो के परिणाम का अनुमान हम अभ्यास (तजरुबे) से तथा शास्त्र वाक्यों से स्पष्ट जान सकते हैं। इसी के अन्तर्गत जीव हिंसा भी आती है । जीव हिंसा का परिणाम तो व्यवहार में स्पष्ट दिखाई देता है । यथा कोई आत्म-हत्या करने जाए, यदि वह असफल रहे तो शासक लोग उसे पकड़कर उसे इस घोर पाप का न्याय पूर्वक दण्ड देते हैं और यदि सफल हो जाए तो शास्त्र वाक्यों के अनुसार दूसरे लोक में भी उसे नरक भोगना पडता है । यह रही बात उसके अपने शरीर के विषय में जिसपर उसका बहुत अधिकार होता है और इसी अपने शरीर के नाश करने का इसे इस लोक में भी और परलोक में भी दण्ड मिलता है अब भला बताइए जब उसको अपने शरीर घात का अधिकार नही है तो दूसरे जीवों के घात अथवा हनन करने का उसको क्या अधिकार हो सकता है ?"

उनका स्पष्ट मत था "पशुबुद्धि छोड़कर मानव बुद्धि का प्रयोग करके जीवन को ऊपर उठाना चाहिए। इस भवसागर में हम बुलबुले रूप होकर जलतल पर उत्पन्न होते हैं, तथा पुनः जलमय हो जाते हैं । यत्न ऐसा होना चाहिए कि हम बुल बुले ही न बनें। यह तभी सम्भव है जब हम "निर्वैरः सर्वभूतेषु" तथा "आत्मवत् सवभूतेषु" के अभ्यासी हों"।

ॐ तत्सत् ।

"ऋषिकेश से महात्माजी का सन्देश"

अब यहां पाठकों के जिज्ञासार्थ ऋषिकेश के एक सुप्रसिद्ध एवं वयोवृद्ध सन्यासी महात्मा स्वामी नीलकण्ठानन्द जी सरस्वती के "कश्मीरी पण्डितों के नाम सन्देश" के कुच्छ अंश प्रस्तुत करते हैं जो उन्होंने 1-9-1982 को श्री परमानन्द रिसर्च इन्सटिच्यूट, रघुनाथ मन्दिर, श्रीनगर के तत्कालीन डाइरेक्टर स्व० प्रो० काशीनाथ जी दर को उनके द्वारा "मांस - भक्षण" के विषय में उनका (महात्मा जी का) मत जानने के लिए एक पत्र के उत्तर में भेज दिया था ।

स्वामी जी मूलतः कश्मीरी पण्डित जाति से ही संबन्ध रखते हैं । श्री स्वामी जी लिखते हैं :-

" .... This has induced me to render some service to the people which is wanted in the " Inevitable Law of action & reaction" (क्रिया प्रतिक्रिया अटल नियम) This is as follows:-

माँसभक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
(मनुस्मृति 5, 55)

मां = ME, स = HE, भक्षयित = WILL EAT, अमुत्र = IN NEXT BIRTH, यस्य = WHOSE, मांस = MEAT, इह = IN THIS BIRTH, आद्मि = SHALL EAT, अहं = I, एतत् = THIS मांसस्य = OF MEAT, मांसत्वं = MEANING (OF MEAT) प्रवदन्ति = SAY मनीषिणः = REALISED SOUL.

"Whose meat I eat in this birth, shall eat

me in next birth." This meaning of मांस (मां-सः) meat has been said by all realised souls, not I only, says Manu. English word MEAT=ME+EAT – I have eaten you, now it is your turn to eat me. This meaning of Manu, the law giver, is based on inevitable law of action and reaction. No other meaning has been given by any Sanskrit dictionary such as 1) पद्मचन्द्र कोष 2) आप्टे etc. They have quoted the highest authority of Manu only, Also पिशिताशनः (पिशितं मांसं अश्नाति — meat eater — demon, राक्षस, पिशाच !

In छा० उप० Udalak says to his son Shwetketu (श्वतेकेतु) अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमय प्राणः, तेजोमयी वाक् (Mind is the essence of food, prana essence of water, tongue essence of fire) Ethical teaching:- एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते (for the sake of momentry pleasure an animal is being deprived of life.)

There is one difficulty in Kashmiri teachers and preachers who are expected to teach are themselves caught by the taste of meat.

इन्द्रियाभ्यामजय्याभ्यां द्वाभ्यामेव हतं जगत् ।
अहो उपस्थ जिह्वाभ्यां द्वावेतौ यत्नतः जयेत ॥

It is a great pity that two unconquerable organs have killed the whole world. They are progeny organ and tongue (Sex and action —

taste and talk). Therefore they should be subjugated with effort.

Charity begins at home, so preachers should start at home.

This law of action and reaction is devoid of caste creed and religion ; equal for Hindu, Muslim, Sikh, Christian, Brahmin, Kheshtri, vaish and Shudra. There is no religion tinge in it.

In Ashtanga-Yoga, the first thing is 'Yama' (यम) yamas are five :- अहिंसा ,सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह— (Non injury, truthfulness, non stealing, chastity ,non accumulation) In five yamas non-injury is the first.

There are two ways 1) शिष्टाचार (Divine path) 2) भ्रष्टाचार (Demoniacal path) Meat eating comes in भ्रष्टाचार (Demoniacal way) आचार भ्रष्टं न पुनन्ति वेदाः (vedas do not purify आचार-भ्रष्ट one who has fallen from शिष्टाचार (Divine path).

In the previous century, due to certain untoward atmosphere, marriage feast in the form of meat had become common, hence great blood-shed of animals was taking place. Supreme Lord in the form of a great compassionate Yogi Mahatma, Champanath Swami, with his great effort, stopped the same which continued upto present.

Now, since about five years the new generation has again started meat feast in the marriages. Kashmiri Pandits are humbly requested to shun together this great sin of animal slaughter which is apt to result in the destruction of the community, Because, Non-injury is the greatest virtue, and the reverse, injury is the greatest sin. I hope that the new gentry will necessarily agree to my humble request accordingly, and not be obstinate.

This appeal is based on three authorities: Scriptural, methodical and inferential. Under such circumstances I would like to request scholars to call a meeting & take the suitable measures to make the problem a success. As for myself, this body is running (84) in age, Therefore devoid of energy, time and desire for correspondence. May Lord bless you all great Scholars.

With best regards.

Yours in the Lord,
(Swami Nilakanthananda Saraswati)
The Divine Life Society
P. O. Shivananda Nagar
District: Tehri Garhwal
U. P. Himalayas - 249192
India.

अन्तिम् प्रार्थना

इस पुस्तक के अनुशीलन से यह भली भांति सिद्ध होता है कि प्रत्येक मनुष्य को अहिंसाव्रत पर चल कर प्राणि मात्र का कल्याण करने का प्रयत्न करना चाहिये। यह कार्य नई पीडी के लिये अधिक ही आवश्यक है। यज्ञोपवीत संस्कार धारी प्रत्येक बालक को तथा बालिकाओं को भी विशेष रूप मे प्रातःकालिक ईशवन्दना में नियमपूर्वक भाग लेना चाहिए। तभी वे मानव धर्म का पालन कर सकने में समर्थ होंगे।

स्मरण रहे कि प्रातः वन्दना में गायत्री मन्त्र का जप परमावश्यक है। यही सनातन धर्म की नीव है। जिसे आधुनिक काल में दृढतर करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

विनीत

लेखक

गायत्री महामन्त्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ

"अर्थात्"

हे प्राण, पवित्रता और आनन्द देने वाले सच्चिदानन्द प्रभो! आप सकल जगत के उत्पादक हैं। हम आपके उस ज्ञान, दुःखनाशक तथा आनन्दस्वरूप तेज का ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों को सदा प्रकाशित करके सत्कर्मों में प्रेरित करे।

Printed at:
KRISHNA PRINTING PRESS
Kothi-Bagh, Srinagar-190001
Kashmir. Phone: 78164